गुटका भा०२

(सकलन) भा० २

संग्रह· राजाशिवप्रसाद सितारे हिन्द

इलाहाबाद
१८८२ ई.

॥ गुटका ॥

OR

SELECTIONS:

BY

RAJA SIVAPRASAD, C.S.I.

श्रीमन्महाराजाधिराज पश्चिमोत्तरदेशाधिकारी श्रीयुत

लेफ़्टिनेंट गवर्नर बहादुर की आज्ञानुसार

राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द ३

ने बनाया ।

PART II.

दूसरा खंड

ALLAHABAD:

1882.

d edition, 10,000 copies.
rice, per copy, 5 annas.

तीसरी बार १०,००० पुस्तकें
मोल फ़ी पुस्तक ।~) आने

Babu Satya narayan

॥ गुटका ॥

OR

SELECTIONS:

BY

RÁJÁ SIVAPRASÁD, C.S.I.

श्रीमन्महाराजाधिराज पश्चिमोत्तरदेशाधिकारी श्रीयुत
लेफ्टिनेंट गवर्नर बहादुर की आज्ञानुसार
राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द २
ने बनाया।

PART II.

दूसरा खंड

ALLAHABAD:

1882.

॥ बामा मनोरंजन ॥

॥ दमयन्ती १ ॥

विदर्भ नगर के राजा भीमसेन की कन्या भुवनमोहनी दमयन्ती का रूप और गुण सारे भारतवर्ष में प्रख्यात हो गया था निषध देश के राजा वीरसेन के पुत्र महा गुणवान अतिसुशील धार्म्मिक नल से स्वयंबर में उस ने जयमाल देकर बिवाह किया बारह बरस तक दोनों का सुख चैन से दिन कटा और इस अन्तर में उनके एक लड़की और एक लड़का भी हो गया यद्यपि मनुजी ने धर्म्मशास्त्र में पासा खेलना मना लिखा है पर नल को इस का शौक़ था अपने छोटे भाई पुष्कर के साथ खेला करता यहां तक कि दाव लगाते लगाते सारा राज हार गया सिवाय एक धोती के और कुछ भी पास न रहा दमयन्ती को साथ लेकर बाहर निकला लड़का लड़की को दमयन्ती ने पहले ही से अपने बाप के घर भेज दियाथा पुष्कर ने सारे राज में डौंड़ी फिरवादी कि नल को जो कोई अपने घर में घुसने देगा जान से हाथ धोएगा राजा नल को तीन दिन रात निराहार बीत गया चौथे दिन नदी के किनारे जाकर चिल्लू से पानी पिया और जङ्गल में जाके फल फूल कन्दमूल से रानी समेत गुज़ारा करने लगा नल ने दमयन्ती को बहुत समझाया कि तुम सी कोमल और सुकुमार स्त्रियों का ऐसी बिपत में कदापि साथ रहना नहीं हो सकता अब उचित यही है कि तुम अपने पिता के घर चली जाओ जो ईश्वर अनुकूल होगा तो फिर भी मिल रहेंगे दमयन्ती यह बात सुनके रोने लगी और बोली कि हे महाराज हे स्वामी हे प्रियतम ऐसा कठोर बचन आप के मुखपंकज से क्योंकर निकला क्या आप बिना पिता के घर में यहां से अधिक सुखी रहूंगी क्या खाना और पहिरना आप के दर्शन से अधिक सुखदाई है जो आप मुझे त्याग

भी करें तो मैं आप को कदापि नहीं त्याग कर सकती जो आप फिर कभी ऐसा बचन मुख से निकालेंगे तो मैं आत्मघात करूंगी यह कह के अपने हाथों को राजा के गले का हार बना एक बृक्ष के नीचे सो गयी राजा ने अपने जी में सोचा कि जो स्त्री राजमन्दिर में फूल के सेज पर भी डरके पैर रखती थी वह भला इस अगम्य जङ्गल में कांटों के ऊपर क्योंकर चल सकेगी मैं तो सब कुछ सह लूंगा पर अपनी प्राणप्यारी को इस बिपत में क्योंकर देख सकूंगा यह मुझे छोड़ने पर कभी राज़ी न होगी पर जो मैं इसे यहां सोती हुई छोड़ दूं तो किसी न किसी तरह अपने पिता के घर पहुंच जायगी निदान यह सोच बिचार के उस चन्द्रवदनी गजगमनी को उसी बृक्ष के तले छोड़ा और आप एक तरफ़ को चला। नल के पास कपड़ा पहरने को न था एक चिड़िया पर उसे पकड़ने को धोती डाली थी वह चिड़िया धोती समेत उड़ भागी जब बिपत के दिन आते हैं तो सारे सामान ऐसे ही बंध जाते हैं निदान राजा नल ने चलते समय दमयन्ती की साड़ी काटकर आधी उस में से अपने पहरने को ली और आधी उस के बदन पर रहने दी इस मनुष्य का मन भी बिधाता ने किस प्रकार का रचा है कि जब कोमल होता है तो मोम से भी अधिक पिघलता है और जब कड़ा होता है तो वज्र को भी मात करता है नल के जी की दशा उस समय नल ही जानता था थोड़ी थोड़ी दूर जा जा कर दमयन्ती के देखने को फिर लौट आता था। निदान जब नल दूर निकल गया और दमयन्ती की आंख खुली तो उसे अपने पास न पाकर सिर धुन्ने और हाथ पटकने लगी मूर्छा खा कर धरती पर गिर पड़ी आंसुओं की धारा बहाने लगी पुकार पुकार के रोने लगी कि हे प्राणनाथ मैंने क्या अपराध किया था जो मुझ दासी को तुमने इस ढब जङ्गल में अकेली छोड़ी उस अपनी प्रतिज्ञा को याद करो जो ब्याह के समय की थी कि जीते जी तुझ से जुदा न होंगे और शीघ्र अपने मुखड़े के प्रकाश से मेरे मन की कली को खिलाओ उस काल उस अबला की यह दशा देखके पत्थर का हिया भी दाड़िम सा दरकता था और मृग पक्षी का कलेजा भी फटा जाता था जब दमयन्ती अपने पति को पुकारती पुकारती सघन बन में हर तरफ़ घूमने लगी तो अचानक एक अजगर ने उसे आ घेरा चाहता ही

था कि मुंह चलावे पर दमयन्ती का चिल्लाना सुनकर जो एक व्याधा उधर को आगया था उसने एक ही तीर में इस अजगर का काम तमाम किया यह व्याधा दमयन्ती के लिये अजगर से भी अधिक दुखदाई हुआ और मोह के बस में पड़कर उस सती का सत्यधर्म नाश करना चाहा दमयन्ती बहुत गिड़गिड़ायी और उस व्याधे को पिता कहके सारी धर्म्म की बात समझायी पर जब देखा कि यह नीच दुर्बुद्धी किसी ढब नहीं मानता तो व्याकुल होके अंतर्यामी घट घट निवासी जगदीश्वर से यों प्रार्थना की कि हे दीनबन्धु दीनानाथ दीन हितकारी यदि मैं सती हूं और यह दुष्ट मेरा सत्य भङ्ग करना चाहता है तो इसी समय इसका नाश हो जाय क्या महिमा है उस अपरंपार करुणानिधि की कि व्याधे ने जो इस बात से क्रोध में आके दमयन्ती पर तीर चलाया आप ही उस तीर से बिध गया और फिर सांस न ली दमयन्ती रोती बिलापती जङ्गल पहाड़ों को छानती सिंह और हाथियों से बचती सौ सौ आफ़तें झेलती बनवासी मुनि लोग और बंजारों से पता लगाती सुबाहु नगर में पहुंची और वहां के राजा की रानी के पास दासी बन के रहने लगी वहां से उसे उसके पिता के भेजे हुए ब्राह्मण ढूंढ़ खोजकर विदर्भ नगर को ले गये राजा नल अपनी प्राणप्यारी के बिरह में शोकाकुल होकर घूमता फिरता अयोध्या में आ निकला और बाहुक के नाम से वहां के राजा ऋतुपर्ण का सारथी बना दमयन्ती के बाप ने नल के ढूंढ़ने को नगर नगर ब्राह्मण भेज दिये थे उन में से सुदेव नाम ब्राह्मण अयोध्या से यह समाचार लाया कि बाहुक नाम एक सारथी जो राजा ऋतुपर्ण के यहां है दमयन्ती का नाम सुन्ते ही आंखों में आंसू भर लाया पर उस ने अपने तईं सिवाय सारथी होने के और कुछ न बतलाया दमयन्ती यह सुनते ही ताड़गयी कि हो न हो वह मेरा ही स्वामी राजा नल है और अपने बाप से उसके बुलाने की प्रार्थना की पर जब वह भीमसेन के बुलाने से न आया और सारे उपाय निष्फल हुए तब दमयन्ती ने अपने बाप से कहके राजा ऋतुपर्ण को यह लिखवाया कि नल के मिलने की अब कुछ आस न रहने से दमयन्ती का दूसरा स्वयंबर रचा जावेगा सो आप कृपा करके शीघ्र आइये और दिन स्वयंबर का ऐसा समीप ठहराया कि बिना राजा नल के हांके कोई घोड़ा

उस अल्प काल में अयोध्या से विदर्भ तक न पहुंच सके राजा नल का रथ हांकना प्रख्यात था राजा ऋतुपर्ण बहुत घबराया कि इतने थोड़े अर्से में क्योंकर विदर्भ पहुंच सकेंगे पर नल ने कहा महाराज आप चिन्ता न कीजिये मैं आप को स्वयंवर के दिन से पहले वहां पहुंचा दूंगा । निदान ऐसा ही हुआ राजा भीमसेन ने ऋतुपर्ण का बड़ा सन्मान किया परंतु वहां स्वयंवर की कुछ रचना और किसी दूसरे राजा को न देखकर यह अपने मन में बहुत लज्जित हुआ नल घोड़े को घुड़साल में बांधकर भीमसेन के सारथी के पास एक टूटीसी खाट पर पड़ रहा दमयन्ती अयोध्याधिपति के पहुंचने के समाचार पाकर बहुत घबरायी और मन में प्रतिज्ञा की कि अब जो नल से मिलाप न हुआ तो आज अवश्य अपने तन को अनल में दाह करूंगी निदान अपनी सखी केशिनी को ऋतुपर्ण के सारथी का अनुसंधान लेने के लिये घुड़साल में भेजा केशिनी ने जाके नल से कहा कि दमयन्ती आप का नाम और पता ठिकाना पूछती हैं नल ने कहा कि मेरा नाम बाहुक है मैं अयोध्या के राजा का सारथी हूं दमयन्ती का स्वयंवर आज ही सुनके मारामार घोड़ों को यहां लाया हूं पर बड़े ही अचरज की बात है कि राजा नल की रानी दमयन्ती ऐसी पतिब्रता सती होके दूसरे पति की इच्छा करे सच है जब मनुष्य के बुरे दिन आते हैं तो स्त्री पुत्र भी अपने नहीं रहते केशिनी बोली हे बाहुक तुम कुछ राजा नल का भी पता ठिकाना बता सकते हो देखो तो उन्हों ने कैसा कठिनाई और निर्दयता का काम किया कि अबला बाला को अकेली जङ्गल में शेर हाथी और रीछ अजगरों के साथ छोड़ कर अपना रस्ता लिया दमयन्ती ने उनके बिरह में अन्न जल और सेज का त्याग करके केवल उन्हीं के नाम स्मरण का अवलम्बन किया है दमयन्ती की यह बिथा सुन कर नल की आंखों से आंसुओं की धारा बह चली बोला कि स्त्री अपने पति से चाहे जितना कष्ट पावे पर उसे औरों के साम्हने उस की निन्दा करनी कदापि उचित नहीं जो राजा नल दमयन्ती को वहां जङ्गल में न छोड़ जाता तो उसका प्राण ही बचना कठिन था और सिवाय इसके जो नल ने कोई निर्दयता का भी काम किया हो तो दमयन्ती को उस पर कोप न करना चाहिये जो आदमी कल राजा था और आज पांव में पहरने

को जूता भी नहीं रखता उसकी मति यदि ठिकाने न रहे तो क्या अचरज है इतना कहके नल फिर रोने लगा केशिनी ने रनवास में जाके यह सब वृत्तान्त दमयन्ती से कहा दमयन्ती ने सुनते ही जान लिया कि यह बाहुक नहीं यह मेरा भर्त्ता राजा नल है केशिनी से कहा कि तू फिर उसके पास जा और देख आ कि वह क्या कर रहा है और अब की बार मेरे लड़के लड़की को भी लेती जा नल अपने बेटा बेटी को देखके आंसुओं की धारा को न रोक सका दोनों को छाती से लगा लिया और कहने लगा कि मेरे भी ऐसे ही बेटा बेटी हैं पर बहुत दिनों से देखा नहीं इन्हें देख के वे मुझे याद आ गये अब इन्हें इनकी माके पास लेजा बिचारे आज नल के लड़के हैं कल किसी दूसरे के हो जायंगे नारी ही धन्य है आज एक पति छोड़ा कल दूसरा कर लिया परंतु रात बीते तो मैं भी यह तमाशा देखूंगा कि राजा नल की सती रानी दमयन्ती किस प्रकार दूसरा भर्त्ता करती है केशिनी ने आके दमयन्ती से सारी बातें ज्यों की त्यों कह दीं और बोली कि यह तो कोई दैवी पुरुष है जितनी सामग्री हमारे यहां से राजा ऋतुपर्ण को दी गई थी इसने देखतेही देखते सब रींधके तयार करली दमयन्ती ने कहा जा जो जो कुछ उसने रींधा हो थोड़ा थोड़ा सब मेरे पास ले आ केशिनी ले आयी दमयन्ती ने चक्खा तो उन में वही स्वाद पाया जो राजा नल के बनाये भोजन में पाती थी राजा नल इस काम में बड़ा ही निपुण था अपनी मा से जाके कहा कि मेरा स्वामी आ गया मुझे उसके पास घुड़साल में जानेकी आज्ञा दीजिये वह इस संबाद को सुनकर अत्यन्त हर्षित हुई और दमयन्ती को घुड़साल में जाने की आज्ञा दी वह अपना लड़का लड़की साथ लिये नल के पास घुड़साल में गई नल को सारथी के भेष में तनछीन मुखमलीन देख के अत्यन्त शोकाकुल हुई आंखों से आंसुओं की धारा बह चली बोली हे प्राणनाथ यह कौन सी नीति थी जो आप ने मुझ निरअपराधिनी अबला को अकेली उस जङ्गल में छोड़ा नल ने लज्जित होके उत्तर दिया कि हे प्राणप्यारी क्या मैं कभी तुम को छोड़ सकता था परन्तु जिस बिपरीत बुद्धि ने मुझ से मेरा राज्य छुड़ा लिया उसी ने तुम्हें भी मुझ से बिछुड़ाया पर जो कुछ तुम्हारे दारुण बिरह का दुसह दुख मैंने सहा है वह मेरा शरीर कहेगा

जो हो पतिव्रता स्त्री अपने पति का दोष देख कर भी उसकी निन्दा नहीं करती है पर तुम तो कल किसी दूसरे की हो जाओगी तुम्हें इन बखेड़ों से अब क्या काम है दमयन्ती ने हाथ जोड़कर निवेदन किया कि महाराज राजा ऋतुपर्ण को केवल आप के बुलाने के लिये स्वयंबर का पत्र लिखवाया था और आप देखिये कि उसके सिवाय और कोई भी यहां नहीं आया मैं ने प्रतिज्ञा की थी कि जो मैं आज आप से न मिलूं तो आग में जल मरूं निदान यह बात धीरे धीरे राजा भीमसेन और ऋतुपर्ण तक भी पहुंची वे इस बात के सुनने से परम आनन्दित हुए राजा ऋतुपर्ण ने नल से कहा कि महाराज मैं ने आप को न जानकर बड़ी अनीति की मेरा कहा सुना और भूल चूक आप सब क्षमा कीजिये राजा ऋतुपर्ण तो अजोध्या की ओर सिधारा और भीमसेन ने नल से यह कहा कि अभी निषध देश में आप का जाना उचित नहीं आप मेरा राज पाट लीजिये इसी जगह रहिये पर जब नल ने सुसराल में रहना स्वीकार न किया और अपने देश में जाने की हठ की तो राजा भीमसेन ने एक रथ सोलह हाथी पांच सौ घोड़े और छ सौ पियादे साथ देकर निषध देश की ओर बिदा किया और दमयन्ती को अपने ही पास रक्खा राजा नल ने निषधदेश में जाकर अपने भाई पुष्कर से यों कहा कि आओ एक बार और भी तुम्हारे साथ पासा खेलें जो हम हारें तो तुम्हारे दास होकर रहें और जो तुम हारो तो हम अपना सारा गया हुआ राज तुम से फेर लें भगवान का करना उस बाज़ी में नल ही की जीत हुई पुष्कर मारे डर के बेत की तरह कांपने लगा परन्तु नल ने समझाया और कहा कि भाई इस में तुम्हारा क्या अपराध है यह सब अपने दिनों का फेर है बहुत बे खटके रहो और जिस ढब पहले काम करते थे उसी तरह करते रहो फिर नल ने दमयन्ती को भी बेटा बेटी समेत विदर्भ नगर से अपने पास बुलवालिया और बहुत काल तक सुख चैन से राज किया जैसा दिन इनका फिर भगवान सब का फेरे ॥

॥ अहल्या बाई २ ॥

हिमालय से लेकर सेतबन्ध रामेश्वर तक ऐसे आदमी इस देश में बहुत कम निकलेंगे जिन्हों ने अहल्याबाई का नाम न सुना हो या उसका बनाया हुआ घाट और पुल और धर्म्मशाला और तलाब आदि न देखा हो परंतु उसका जीवनवृत्तान्त बहुत कम लोगों ने सुना इस लिये इस जगह पर कुछ थोड़ा सा लिखा जाता है ॥

मल्हारराव हुल्कर नारानदी के तीर होहन गांव में एक शूद्र के कुल में पैदा हुआ था भाग्य के बल से पेशवा बहादुर की सेना में सेनादार होगया जिन दिनों में भास्कर पांडु ने बंगाला लूटा तो इसने गुजरात को ग़ारत किया और फिर दिल्ली के तख़्त पर से अहमदशाह को उठाकर दूसरे आलमगीर को बिठाया लाहोर तक मरहठों का झंडा पहुंचाया लेकिन भाऊ के साथ अहमदशाह दुर्रानी से पानीपत की लड़ाई में शिकस्त खाकर पीछे हटा मालवा इसे जागीर में मिला था इस लिये वह मालवे का राजा कहलाया लड़का एक ही था नाम उसका खांडेराव जाटों के हाथ से भरतपुर के पास कुंभेर की लड़ाई में मारागया और अपनी स्त्री अहल्याबाई को बिधवा छोड़ गया जब सन् १७६७ ई० में मल्हारराव मरा तो अहल्याबाई का बेटा मालीराव गद्दी पर बैठा परंतु नौ महीने राज्य करके वह भी परलोक को सिधारा और वारिस न रहने के कारन अहल्या को आपही राज काज संभालना पड़ा गंगाधर यशवन्त ने जो राजपुरोहित था बहुतेरा चाहा कि अहल्याबाई कोई लड़का गोद लेले क्योंकि लड़का गद्दी पर रहने से उसके गुरु अर्थात् पुरोहित जी का बड़ा इख़्तियार रहता और अहल्याबाई सी बुद्धिमती रानी के साम्हने काहे को किसी दूसरे का कुछ हुक्म चल सकता था गंगाधर ने अहल्या को बहुत समझाया कि लड़के बिना वंश का नाम क्योंकर रहेगा और धमकाया भी कि लड़का न लोगी तो यह राज दूसरों के हाथ में चला जायगा और आस पास के राजाओं को अहल्या

से लड़ने को उभारा अहल्या ने गंगाधर से कहला भेजा कि सुन एक राजा की तो मैं स्त्री थी और दूसरे की मा जब परमेश्वर ने उन्हीं को उठा लिया और मल्हारराव का वंश नाश किया तो फिर अब दूसरे किसी का लड़का गोद लेकर उसे राजा बनाना मुझे हर्गिज़ मंजूर नहीं और साथ ही लड़ाई का सामान भी दुरुस्त किया उसने इस बात का पक्का मंसूबा ठाना था कि यदि लड़ाई हो आप धनुष बान लेके हाथी पर फ़ौज के साथ जावे पर अहल्या का साहस और बुद्धिबल देखके किसी का भी हियाव न पड़ा कि उससे लड़ने को कमर बांधे फिर कुछ दिन बाद अहल्याबाई ने राजी होके गंगाधर को अपना दीवान मुक़र्रर किया और तुक्काजी हुल्कर को सेनापति और काम उन दोनों को ऐसा जुदा जुदा बांट दिया कि तीस बरस के अर्से में जो अहल्या ने राज किया उन के दर्मियान कभी कुछ तक़रार या झगड़ा न हुआ कहते हैं कि जब अहल्याबाई ने राज काज अपने हाथ में लिया तो उस समय दो करोड़ रुपया ख़ज़ाने में था और चार पांच लाख रुपये साल की उसे अपनी जागीर से भी आमदनी थी अह-ल्याबाई ने संकल्प करदिया कि यह सारा धन पुण्य के कामों में लगाया जावे और वैसा ही उसने कर दिखलाया जिस तरह चिड़ियों को पिंजरे में रखते हैं उस तरह स्त्रियों को पर्दे के अन्दर रखना यह दस्तूर इस देश में मुसलमानों की अमल्दारी से चला है क्योंकि मुसलमान बादशाह बड़े दुराचार होते थे जिस स्त्री को सुन्दर और नवयौवना देखते तुरंत महलों में डाल लेते थे इसी डर से स्त्रियां घर में पर्दे के अन्दर रहने लगीं नहीं तो धर्म्मशास्त्र में कहीं पर्दे के अन्दर रहने का हुक्म नहीं लिखा है देखो यही अहल्याबाई जिस का यश चहुंदिश छा रहा है भरे दर्बार में बैठती थी और अपनी प्रजा का आप न्याय करती थी ऐसा कोई फ़र्यादी नहीं था जो उस तक नहीं पहुंच सकता और छोटे से छोटा मुक़द्दमा भी ऐसा कोई नहीं था जिस का वह मन देके पक्षपात रहित सूक्ष्म बिचार न करती प्रजा उससे सब राज़ी थी वह कारदारों की बदली कभी नहीं करती तीस बरस तक अर्थात् जब तक उसने राज किया वही गंगाधर यशवन्त दीवान बना रहा वह अच्छी तरह जानती थी कि नित नये कारदार मुक़र्रर होने से उन में

आपस की डाह और तकरार पैदा होती है और हर कोई काम पाने की उम्मेद में पुराने को गिराने के लिये फ़साद और बखेड़ा उठाया करता है वह जो कुछ करती ईश्वर का उसमें सदा भय रखती और अक्सर कहा करती कि एक दिन हम सब को अपने कामों का हिसाब सर्वशक्तिमान घटघट अंतर्यामी जगदीश्वर को समझाना पड़ेगा वह नित घड़ीरात रहते उठती और ईश्वर का अर्चन बन्दन करके धर्म्मग्रन्थों का पाठ करती वह पढ़ने लिखने में बहुत निपुण थी फिर अपने हाथ से कुछ दान और ब्राह्मणों को भोजन कराती तब आप खाती मांस मछली का उसे त्याग था आहार के बाद कुछ देर आराम करती फिर दो पहर पर दो बजे राजवेष धारन करके सभा में जाती और संध्या तक दर्बार में रहती फिर ईश्वर का अर्चन बन्दन और आहार करके नौ बजे से ग्यारा बजे तक राज काज देखती इन्दौर पहले एक गांव था उसी के समय में शहर हुआ प्रजाके धन में उसे कुछ भी लोभ न था जो उसके राज्य में किसी की वृद्धि होती तो वह उसे मानों अपनी ही वृद्धि समझती कर गांव में तप्पेदास और बनारसदास दोनों भाई साथ ही मर गये धन बहुत छोड़ गये पर सन्तान किसी के नहीं उनकी स्त्रियों ने अहल्याबाई की राजधानी महेसुर में आके चाहा कि अपना सारा द्रव्य राजभंडार में दे दें परंतु अहल्या ने कुछ भी नहीं लिया और कहा कि तुम इस धन से अपने स्वामियों का नाम रहने को कोई कीर्त्ति स्थापन करो निदान उन स्त्रियों ने कर गांव में नदी पर ऐसा पक्का घाट बनाया कि वह अब तक मौजूद है गर्मियों में वह जाबजा पौसरे बैठाती जाड़ों में कम्बल और कपड़े बांटती भूखों को जहां तक बन पड़ता खाने को देती उसके मन की दया इसी बात से प्रगट हो जावेगी कि नदी में मछलियों को चारा देने के वास्ते भी आदमी नौकर थे और चिड़ियों के लिये पके हुए खेत मोल लिये जाते थे और उसकी बुद्धि का बल और राज का अच्छा नियम इसी एक काम से मालूम हो जावेगा कि आगे भीलों की लूट मार से व्योपारियों को रस्ता चलना कठिन हो गया था लेकिन जब से उसने यह दस्तूर बांध दिया कि भील लोग अपने गुज़ारे को अधेला बैल व्योपारियों से लिया करें और रस्तों की हिफ़ाज़त करें जो उन के इलाक़े में किसी का माल चोरी जाय

तो दाम दाम भर दें नहीं तो उचित दंड पावें चोरी चकारी और लूट मार उन जंगल पहाड़ों में बहुत घटगई अहल्याबाई कुछ बहुत सुंदर न थी पर रंग गोरा और चिहरा धर्म्म के तेज से दिपता था कहते हैं कि सेंधिया की मा अनन्ताबाई ने जो बड़ी रूपवती थी अहल्या के यश और सुख्याति पर डाह खाकर एक दासी को उसे देखने के लिये भेजा उसने आके बयान किया महारानी जी अहल्या कुछ सुंदर तो नहीं है पर एक प्रकार की पारमेश्वरी ज्योति उसके मुखड़े पर दिप रही है वह सदा प्रफुल्लित रहा करती थी मरने पर भी उसके मुंह की आकृत नहीं बिगड़ी जब से वह बिधवा हुई रंगीन कपड़ा कभी नहीं पहना और एक माला के सिवाय कभी कोई आभूषण धारण नहीं किया गर्व का उस में लेश मात्र न था एक पण्डित उसकी तारीफ़ में बड़ा सुंदर ग्रंथ बनाके लाया सुनके आज्ञा दी कि इस ग्रंथ को इसी दम नर्मदा में डुबा दो निदान सन् १७९५ ई० में इस धार्म्मिक स्त्री का परलोक गमन हुआ धर्म्म का जो कुछ प्रभाव है वह अच्छी तरह साबित हो गया यदि अहल्या अपना रुपया गोले बारूत में ख़र्चती और सारा हिन्दुस्तान भी अपने तहत में लाती तो ऐसा नाम न पाती जैसा इस धर्म्म की बदौलत पाया देखो कितने ही राजा ऐसे हो गये हैं जिन्हों ने इस देश में एकछत्र राज किया पर आज उनका कोई नाम भी नहीं जानता और अहल्या का नाम यावत् चन्द्र दिवाकर हैं लोग सुख्याति के साथ याद रक्खेंगे ॥

॥ रानी भवानी ३ ॥

रानी भवानी बंगाले के राजशाही ज़िले में छातिन गांव के चौधरी आत्माराम की लड़की थी और नाटौर के ज़मींदार राजा रामजीवनराय के बेटे राजा रामकान्त से ब्याही गयी जैसी वह सुन्दर थी वैसी ही सुलक्षणा भी थी और धर्म्म और परोपकार में उसकी निष्ठा लड़कपन से रहती थी दयाराम नाम राजा रामजीवन का पुराना ख़ैरख़ाह नौकर था राजा रामकान्त को ज़मींदारी के काम काज में ग़ाफ़िल देख कर एक दिन समझाने और नसीहत करने लगा राजा रामकान्त ने इस बात पर ख़फ़ा होकर उसे अपने यहां से निकाल दिया वह बड़ा चतुर और बुद्धिमान था बंगाले के सूबेदार नव्वाब अलीवर्दीख़ां के दर्बार में हाज़िर रहने लगा एक दिन निवेदन किया कि जहांपनाह राजा रामकान्त ने बत्तीस लाख रुपया घर में जमा किया और दो लाख का एक सर्पेच मोल लिया पर आप का रुपया अदा नहीं करता बाक़ी डालता चला जाता है और सर्कारी मालगुज़ारी को बातों में उड़ाना चाहता है नव्वाब ने पूछा कि तू बत्तीस लाख रुपये का उसके घर में निशान दे सकेगा उसने कहा बेशक नव्वाब ने फिर पूछा कि राजा रामजीवन के कुटुम्ब में और कोई भी राज के लाइक़ है उसने कहा उनका भतीजा देवीप्रसाद बड़ा ईमान्दार और ज़मींदारी के काम में होश्यार है नव्वाब ने उसी दम हुक्म दिया कि फ़ौज जावे और रामकान्त का घर बार लूट लेवे और देवीप्रसाद उसकी जगह राजा होवे मुसलमानों की अमल्दारी में प्राय: ऐसा ही अंधेर मचा रहता था रामकान्त महलों में था सुना कि नव्वाब की फ़ौज घर में घुस आई और लूट मार कर रही है इज़्ज़त के ख़ौफ़ से रानी भवानी को साथ ले पर्नाले की राह बाहर निकला धन द्रव्य का कुछ भी मोह न किया रानी भवानी एक तो

रानी दूसरे गर्भवती पैदल काहे को कभी चली थी ज्यों त्यों बैठती उठती रामकान्त के साथ गंगा के किनारे तक पहुंची वहां से एक छोटीसी नाव पर बैठ कर दोनों मुर्शिदाबाद आये और जगतसेठ की शरण लेकर एक छोटी सी हवेली में रहने लगे नित की तकलीफ़ सहते सहते घबरा गये एक दिन रामकान्त खिड़की में से दयाराम को पालकी पर जाते हुए देख के बोला कि दया भाई अब इस बिपत में कब तक रक्खोगे दयाराम रामकान्त को देखते ही पालकी से उतर कर उसके पास चला आया और अपने मालिक की ऐसी दुर्दशा देखकर आंखों में आंसू भर लाया बोला कि पचास हज़ार रुपया होय तो तुम को तीन ही दिन में फिर राज दिलवा सकता हूं राजा ने कहा मेरे पास इस समय रुपया कहां रानी ने समझाया कि आप न घबराइये और अपना सारा ज़ेवर उतार दिया दयाराम ने उसे बेच कर जहां देवीप्रसाद रहता था वहां से नव्वाब की डेवढ़ी तक जितने बनिये और दूकान्दार थे और जो जो नौकर चाकर नव्वाब के आस पास और दर्वाज़े पर हाज़िर रहा करते थे सब को पांच से ले पांच सौ तक रुपये बांटे और कहा कि आप लोग जिस समय देवीप्रसाद दर्बार को जाय उसे सुना के इतना कह देना कि देखो यह वही अभागा जाता है देवीप्रसाद यह सुन कर बड़ा दुखी हुआ और नव्वाब के पास जाके रोया नव्वाब बोला कि जो तुझे सारा संसार अभागा कहता है तो तू अवश्य अभागा है मैं ऐसे अभागे को कभी राजा नहीं करूंगा और फिर दयाराम से पूछा कि रामजीवनराय के कुल में कौन दूसरा आदमी राज के लाइक़ है उसने कहा कि जहांपनाह उन का बेटा ही रामकान्त बड़ा ईमान्दार और ज़मींदारी के काम में होशयार मौजूद है निदान नव्वाब ने उसी दम रामकान्त को राजगी का ख़िलत बख़शा और देवीप्रसाद को दर्बार से निकलवा दिया तब से राजा रामकान्त दयाराम को बहुत मानता रहा और सोलह बरस राज करके परलोक को सिधारा रानी भवानी के लड़का कोई न था दो हुए थे सो दोनों बालक पन ही में मर गये थे सारा काम ज़मींदारी का आप देखती थी और दान और धर्म्म में बड़े बड़े राजाओं को मात करती थी एक लाख अस्सी हज़ार रुपया साल तो नक़द पण्डित और साधु संत बैरागियों का

मुक़र्रर था और प्रायः पांच लाख बीघे लोगों को धरती मुआफ़ थी घाट धर्म्मशाला आदि के सिवाय तीन सौ हवेली बनारस में मोल ली थीं कि जो लोग काशीबास करने को आवें बिना किराये उन में रहा करें बहुतेरे आदमी उसके देश के जो काशी में रहने को आते उन्हें मकान के सिवाय जन्मभर परिवार समेत खाने पहरने को भी देती पंचक्रोसी की सारी सड़क में थोड़ी २ दूर पर धर्म्म ठीहे बनवाकर और कूए खुदवा कर पेड़ लगवा दिये थे कई जगह धर्म्मशाला बनवा के तलाव भी तैयार कर दिये थे सदावर्त्त जारी था काशी में आठ मन भीगा चना और पच्चीस मन चांवल नित भूखों को बांटा जाता था और एक सौ आठ स्त्री पुरुष इच्छा भोजन करते थे और जब रानी भवानी काशी में आयी कहते हैं कि सत्तरह सौ नाव उसके साथ थीं उसका रहना अक्सर मुर्शिदाबाद के ज़िले में गंगा के तीर बड़नगर में होता था और यह बात सोच कर कि सब जगह सब समय भूखे नंगे उस तक नहीं पहुंच सकते थे और न वह उनको दान दे सकती थी हुक्म था कि जब कोई भूखा नंगा आवे तो रुपये तक पोतदार पांच रुपये तक ख़ज़ानची दस रुपये तक मुत्सद्दी और सौ रुपये तक दीवान बिना पूछे दे दे जब सौ रुपये से ऊपर देना हो तो रानी से पूछे ज़मींदारी भर में ब्राह्मण की कन्या के विवाह का ख़र्च रानी की सर्कार से दिया जाता नवरात्र में दो हज़ार वस्त्र सुहागन और कुमारियों को बटता और उसके साथ एक एक सोने की नथ भी दी जाती और पचास हज़ार रुपया पण्डितों को मिलता रोगियों के देखने को आठ बैद नौकर थे वह ज़मींदारी भर में गांव गांव दवा लेके घूमा करते और बीमारों की सेवा को उनके साथ नौकर भी रहा करते रानी भवानी की दान धर्म्म में जैसी निष्ठा थी इसी बात से मालूम हो जायगी कि जब एक साल इलाक़ों की आमदनी आने में देर हुई तो हुक्म दिया कि खत्तों में जो कुछ अनाज है बेच डालो और जिस २ को जो जो देने के लिये मैंने कहा है तुरंत दे दो कहते हैं कि वह अनाज तीन लाख रुपये को बिका और ख़ज़ाने में आने से पहले ही लोगों को बट गया तो भी पूरा न पड़ा तब अपना गहना बेचकर दिया पर जिसे जो देने को कहा था वह बचन न तोड़ा वह नित चार घड़ी रात रहे उठती थी और ईश्वर का ध्यान और

जप करती भोर होने पर स्नान करके दोपहर तक ईश्वर का अर्चन बन्दगी और धर्म्मशास्त्र का श्रवण करती फिर कुछ जल पान करके अपने हाथ से रसोई बनाती और उसमें से दस ब्राह्मणों को खिलाके तब आप भोजन करती फिर दिवानख़ाने में कुशासन पर बैठ कर पान सुपारी खाती और जो कुछ कार्दारों को आज्ञा देनी होती सो उन्हें लिखवा देती तीसरे पहर को धर्म्मशास्त्र सुनती दो घड़ी दिन रहे कार्दार लोग काग़ज़ दस्तख़त कराने को लाते रात को फिर चार घड़ी जप करती तब कुछ भोजन करके डेढ़ पहर रात तक राजकाज की सुध लेती और दर्बार करती बत्तीस बरस की अवस्था में बिधवा हुई थी उन्नासी बरस की अवस्था में परलोक को सिधारी पर नियम उसका कभी नहीं टूटा ॥

॥ राजा भोज का सपना ॥

वह कौनसा मनुष्य है जिसने महा प्रतापी राजा महाराज भोज का नाम न सुना हो उसकी महिमा और कीर्ति तो सारे जगत में व्याप रही है बड़े बड़े महिपाल उसका नाम सुनते ही कांप उठते थे और बड़े बड़े भूपति उसके पांव पर अपना सिर नवाते सेना उसकी समुद्र की तरंगों का नमूना और ख़ज़ाना उसका सोने चांदी और रत्नों की खान से भी दूना उसके दान ने राजा करण को लोगों के जी से भुलाया और उसके न्याय ने विक्रम को भी लजाया कोई उसके राजभर में भूखा न सोता और न कोई उघाड़ा रहने पाता जो सत्तू मांगने आता उसे मोतीचूर मिलता और जो गज़ी चाहता उसे मलमल दीजाती पैसे की जगह लोगों को अशरफ़ियां बांटता और मेह की तरह भिखारियों पर मोती बरसाता एक एक श्लोक के लिये ब्राह्मणों को लाख लाख रुपया उठा देता और एक एक दिन में लाख लाख गोदान करता सवालाख ब्राह्मणों को षटरस भोजन कराके तब आप खाने को बैठता तीर्थयात्रा स्नान दान और व्रत उपवास में सदा तत्पर रहता बड़े बड़े चांद्रायण किये थे और बड़े बड़े जङ्गल पहाड़ छान डाले थे एक दिन शरद ऋतु में संध्या के समय सुन्दर फुलवाड़ी के बीच स्वच्छ पानी के कुंड के तीर जिसमें कुमुद और कमलों के बीच जल पक्षी कलोलें कर रहे थे रत्न जटित सिंहासन पर कोमल तकिये के सहारे से स्वस्थ चित्त बैठा हुआ महलों की सुनहरी कलसियां लगी हुई संगमर्मर की गुम्ज़ियों के पीछे से उदय होता हुआ पूर्णिमा का चांद देख रहा था और निर्जन एकान्त होने के कारन मनही मन में सोचता कि अहो मैंने अपने कुल को ऐसा प्रकाश किया जैसे सूर्य से इन कमलों का विकास होता है क्या मनुष्य और क्या जीव जन्तु मैंने अपना सारा जन्म इन्हीं

के भला करने में गंवाया और ब्रत उपवास करते २ अपने फूल से शरीर को कांटा बनाया जितना मैंने दान दिया उतना तो कभी किसी के ध्यान में भी न आया होगा जिन जिन तीर्थों की मैंने यात्रा की वहां कभी पंछी ने पर भी न मारा होगा मुझ से बढ़ कर अब इस संसार में और कौन पुण्यात्मा है और आगे भी कौन हुआ होगा जो मैं ही कृतकार्य नहीं तो फिर और कौन हो सकता है मुझे अपने ईश्वर पर दावा है वह मुझे अवश्य अच्छी गति देगा ऐसा कब हो सकता है कि मुझे भी कुछ दोष लगे इसी अर्से में चोबदार पुकारा चौधरी इन्द्रदत्त निगाह रूबरू श्रीमहाराज सलामत भोज ने आंख उठायी दीवान ने साष्टांग दण्डवत की फिर सन्मुख आ हाथ जोड़ यों निवेदन किया पृथ्वीनाथ वह कूए सड़क पर जिनके वास्ते आपने हुक्म दिया था बनकर तैयार होगये और आम के बाग़ भी सब जगह लग गये जो पानी पीता है आप को असीस देता है और जो उन पेड़ों की छाया में विश्राम करता है आप की बढ़ती दौलत मनाता है राजा अति प्रसन्न हुआ और कहा कि सुन मेरी अमल्दारी भर में जहां जहां सड़क हैं कोस कोस पर कूए खुदवा के सदावर्त्त बैठा दे और दुतरफ़ा पेड़ भी जल्द लगवा दे इसी अर्से में दानाध्यक्ष ने आकर आशीर्वाद दिया और निवेदन किया कि धर्मावतार वह जो पांच हज़ार ब्राह्मण हर साल जाड़ों में रज़ाई पाते हैं सो डेवढ़ी पर हाज़िर हैं राजा ने कहा अब पांच के बदले पचास हज़ार को मिला करे और रज़ाई की जगह शाल दुशाला दिया जावे दानाध्यक्ष दुशालों के लाने के वास्ते तोशेख़ाने में गया इमारत के दरोग़ा ने आकर मुजरा किया और ख़बर दी कि महाराज वह बड़ा मन्दिर जिसके जल्द बना देने के वास्ते सरकार से हुक्म हुआ है आज उसकी नेव खुद गयी पत्थर गढ़े जाते हैं और लुहार लोहा भी तैयार कर रहे हैं महाराज ने तिउरियां बदलकर उस दरोग़ा को ख़ूब घुरका और कहा कि मूर्ख वहां पत्थर और लोहे का क्या काम है बिल्कुल मन्दिर संगमर्मर और संगमूसा से बनाया जावे और लोहे के बदले उस में सब जगह सोना काम में आवे जिसमें भगवान भी उसे देख कर प्रसन्न हो जावे और मेरा नाम इस संसार में अतुल कीर्त्ति पावे यह सुनकर सारा दर्बार पुकार उठा कि धन्य महाराज धन्य क्यों नहो जब ऐसे हो तब तो ऐसे हो आपने इस

कलिकाल को सत्ययुग बना दिया मानो धर्म का उद्धार करने को इस जगत में अवतार लिया आज आप से बढ़कर और दूसरा कौन ईश्वर का प्यारा है हमने तो पहलेही से आप को साक्षात धर्मराज बिचारा है व्यासजी ने कथा आरम्भ की भजन कीर्तन होने लगा चांद सिर पर चढ़ आया घड़ियाली ने निवेदन किया कि महाराज रात आधी के निकट पहुंची राजा की आंखों में नींद छारही थी व्यासजी कथा कहते थे पर राजा को ऊंघ आती थी उठकर रनवास में गया जड़ाऊ पलंग और फूलों की सेज पर सोया रानियां पैर दाबने लगीं राजा की आंख झपक गयी तो स्वप्न में क्या देखता है कि वह बड़ा संगमर्मर का मन्दिर बनकर बिल्कुल तैयार हो गया जहां कहीं उस पर नक्काशी का काम किया है तो बारीकी और सफ़ाई में हाथीदांत को भी मात कर दिया है जहां कहीं पच्चीकारी का हुनर दिखलाया है तो जवाहिरों को पत्थरों में जड़कर तसवीर का नमूना बना दिया है कहीं लालों के गुल्लालों पर नीलम की बुलबुलें बैठी हैं और ओस की जगह हीरों के लोलक लटकाये हैं कहीं पुखराजों की डंडियों से पन्ने के पत्ते निकाल कर मोतियों के भुट्टे लगाये हैं सोने की चोबों पर कमख़ाब के शामियाने और उनके नीचे बिल्लोर के हौज़ों में गुलाब और केवड़े के फुहारे छूट रहे हैं मानो धूप जल रहा है सैकड़ों कपूर के दीपक बल रहे हैं राजा देखते ही मारे घमंड के फूलकर मशक बनगया कभी नीचे कभी ऊपर कभी दाहने कभी बायें निगाह करता और मन में सोचता कि क्या अब इतने पर भी मुझे कोई स्वर्ग में घुसने से रोकेगा या पवित्र पुण्यात्मा न कहेगा मुझे अपने कर्म्मों का भरोसा है दूसरे किसी से क्या काम पड़ेगा इसी अर्से में वह राजा उस सपने के मन्दिर में खड़ा खड़ा क्या देखता है कि एक जोत सी उसके सामने आस्मान से उतरी चली आती है उसका प्रकाश तो हज़ारों सूर्य से भी अधिक है परंतु जैसे सूरज को बादल घेर लेता है इस प्रकार उसने मुंह पर घूंघट सा डाल लिया है नहीं तो राजा की आंखें कब उस पर ठहर सकती थीं बरन इस घूंघट पर भी मारे चकाचौंध के झपकी चली जाती थीं राजा उसे देखते ही कांप उठा और लड़खड़ाती सी ज़ुबान से बोला कि हे महाराज आप कौन हैं और मेरे पास किस प्रयोजन से आये हैं उस देवी पुरुष ने बादल की गरज

के समान गंभीर उत्तर दिया कि मैं सत्य हूं मैं अंधों की आंखें खोलता हूं मैं उन के आगे से धोखे की टट्टी हटाता हूं मैं मृगतृष्णा के भटके हुओं का भ्रम मिटाता हूं और सपने के भूले हुओं को नींद से जगाता हूं रे भोज यदि कुछ हिम्मत रखता है तो आ हमारे साथ आ और हमारे तेज के प्रभाव से मनुष्यों के मन के मन्दिरों का भेद ले इस समय हम तेरे ही मन को जांच रहे हैं राजा के जी पर एक अजब दहशत सी छागयी नीची निगाह करके गर्दन खुजाने लगा सत्य बोला भोज तू डरता है तुझे अपने मन का हाल जानने में भी भय लगता है भोज ने कहा कि नहीं इस बात से तो नहीं डरता क्योंकि जिसने अपने तईं नहीं जाना उसने फिर क्या जाना सिवाय इसके मैं तो आप चाहता हूं कि कोई मेरे मन की थाह लेवे और अच्छी तरह से जांचे मारे व्रत और उपवासों के मैंने अपना फूल सा शरीर कांटा बनाया ब्राह्मणों को दान दक्षिणा देते २ सारा ख़ज़ाना ख़ाली कर डाला कोई तीर्थ बाक़ी न रक्खा कोई नदी या तलाव नहाने से न छोड़ा ऐसा कोई आदमी नहीं है जिसकी निगाह में मैं पवित्र पुण्यात्मा न ठहरूं सत्य बोला ठीक पर भोज यह तो बतला कि तू ईश्वर की निगाह में क्या है क्या हवा में बिना धूप तृसरेणु कभी दिखलायी देते हैं पर सूरज की किरन पड़ते ही कैसे अनगिनत चमकने लग जाते हैं क्या कपड़े से छाने हुए मैले पानी में किसी को कीड़े मालूम पड़ते हैं पर जब ख़ुर्दबीन शीशे को लगा कर देखो तो एक एक बूंद में हज़ारों ही जीव सूझने लग जाते हैं पस जो तू उस बात के जानने से जिसे अवश्य जानना चाहिये डरता नहीं तो आ मेरे साथ आ मैं तेरी आंखें खोलूंगा निदान सत्य यह कह के राजा को मन्दिर के उस बड़े ऊंचे दर्वाज़े पर चढ़ा लेगया कि जहां से सारा बाग़ दिखलायी देता था और फिर वह उससे यों कहने लगा कि भोज मैं अभी तेरे पापकर्म्मों का कुछ भी चरचा नहीं करता क्योंकि तूने अपने तईं निरा निष्पाप समझ रक्खा है पर यह तो बतला कि तूने पुण्यकर्म कौन कौन से किये हैं कि जिन से सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर संतुष्ट होगा राजा यह सुन के अत्यन्त प्रसन्न हुआ यह तो मानों उसके मन की बात थी पुण्यकर्म के नाम ने उसके चित्त को कमल सा खिला दिया उसे निश्चय था कि पाप तो मैंने चाहे किया हो चाहे न किया

हो पर पुण्य मैंने इतना किया है कि भारी से भारी पाप भी उसके पासंग में न ठहरेगा राजा को वहां उस समय सपने में तीन पेड़ बड़े ऊंचे २ अपनी आंख के सामने दिखायी दिये फलों से इतने लदे हुए कि मारे बोझ के उनकी टहनियां धरती तक झुक गयी थीं राजा उन्हें देखते ही हरा हो गया और बोला कि सत्य यह ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया अर्थात् ईश्वर और मनुष्य दोनों की प्रीति के पेड़ हैं देख फलों के बोझ से धरती पर नये जाते हैं यह तीनों मेरे ही लगाये हैं पहिले में तो वह सब लाल २ फल मेरे दान से लगे हैं और दूसरे में वह पीले पीले मेरे न्याय से और तीसरे में यह सब सफ़ेद फल मेरे तप का प्रभाव दिखलाते हैं मानों उस समय चारों ओर से यह ध्वनि राजा के कान में चली आती थी कि धन्य हो महाराज धन्य हो आज तुमसा पुण्यात्मा दूसरा कोई नहीं तुम साक्षात धर्म के अवतार हो इस लोक में भी तुमने बड़ा पद पाया है और उस लोक में भी तुम्हें इस से अधिक मिलेगा तुम मनुष्य और ईश्वर दोनों की आंखों में निर्दोष और निष्पाप हो सूर्य के मंडल में लोग कलंक बतलाते हैं पर तुम पर एक छींटा भी नहीं लगाते सत्य बोला कि भोज जब में इन पेड़ों के पास से आया था जिन्हें तू ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया के बतलाता है तब तो उनमें फल फूल कुछ भी नहीं था निरे ठूंठ से खड़े थे यह लाल पीले और सफ़ेद फल कहां से आ गये यह सचमुच उन पेड़ों में फल लगे हैं या तुझे फुसलाने और खुश करने को किसीने उनकी टहनियों से लटका दिये हैं चल उन पेड़ों के पास चल कर देखें तो सही मेरी समझ में तो यह लाल लाल फल जिन्हें तू अपने दान के प्रभाव से लगे बतलाता है यश और कीर्त्ति फैलाने की चाह अर्थात् प्रशंसा पाने की इच्छा ने इस पेड़ में लगाये हैं निदान जोहीं सत्यने उस पेड़ के छूने को हाथ बढ़ाया राजा सपने में क्या देखता है कि वह सारे फल जैसे आस्मान से ओले गिरते हैं एक आनकी आन में धरती पर गिर पड़े धरती सारी लाल होगयी पेड़ों पर सिवाय पत्तों के और कुछ न रहा सत्यने कहा कि राजा जैसे कोई किसी चीज़ को मोम से चिपकाता है उसी तरह तूने अपने भुलाने को प्रशंसा पाने की इच्छा से यह फल इस पेड़ पर लगा लिये थे सत्य के तेज से वह मोम गल गया पेड़ ठूंठ का ठूंठ रह गया जो कुछ तूने दिया और किया सब

दुनियां के दिखलाने और मनुष्यों से प्रशंसा पाने के लिये केवल ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया से तो कुछ भी नहीं दिया यदि कुछ दिया हो या किया हो तो तूही क्यों नहीं बतलाता मूर्ख इसी के भरोसे पर फूला हुआ स्वर्ग में जाने को तैयार हुआ था भोज ने एक ठंढी सांस ली उसने तो औरों को भूला समझा था पर वह सबसे अधिक भूला हुआ निकला सत्य ने उस पेड़ की तरफ़ हाथ बढ़ाया जो सोने की तरह चमकते पीले पीले फलों से लदा हुआ था सत्य का हाथ पास पहुंचते ही इसका भी वही हाल हो गया जो पहले का हुआ था सत्य बोला कि राजा इस पेड़ में ये फल तूने अपने भुलाने को स्वर्ग को स्वार्थ सिद्ध करने की इच्छा से लगा लिये थे कहनेवालेने ठीक कहा है कि मनुष्य मनुष्य के कर्म्मों से उसके मनकी भावना विचार करता है और ईश्वर मनुष्य के मनकी भावना के अनुसार उसके कर्म्मों का हिसाब लेता है तू अच्छी तरह जानता है कि यही न्याय तेरे राज्य की जड़ है जो न्यान न करे तो फिर यह राज्य तेरे हाथ में क्योंकर रह सके जिस राज्य में न्याय नहीं वह तो बेनीव का घर है बुढ़िया के दांतों की तरह हिलता है अब गिरा तब गिरा मूर्ख तू ही क्यों नहीं बतलाता कि यह तेरा न्याय स्वार्थ सिद्ध करने और सांसारिक सुख पाने की इच्छा से है अथवा ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया से भोज की पेशानी पर पसीना हो आया आंखें नीची करलीं जवाब कुछ न बन पड़ा तीसरे पेड़ की पारी आयी सत्य का हाथ लगते ही उसकी भी वही हालत हुई राजा अत्यन्त लज्जित हुआ सत्य ने कहा कि मूर्ख यह तेरे तप के फल कदापि नहीं इनको तो इस पेड़ पर तेरे अहंकार ने लगा रक्खा था वह कौन सा व्रत वा तीर्थयात्रा है जो तूने निरहंकार केवल ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया से किया हो तूने यह तप इसी वास्ते किया कि जिसमें तू अपने तईं औरों से अच्छा और बढ़ के विचारे ऐसे ही तप पर गोबरगनेश तू स्वर्ग मिलने की उमेद रखता है पर यह तो बतला कि मन्दिर की उन मुंडेरों पर वे जानवर से क्या दिखलाई देते हैं कैसे सुन्दर और प्यारे मालूम होते हैं पर तो उनके पन्ने के हैं और गर्दन फ़ीरोज़े की दुम में सारे क़िस्म के जवाहिर जड़ दिये हैं राजा के जी में घमंड की चिड़िया ने फिर फुरफुरी ली मानों बुझते हुए दिये की तरह जग जगा उठा जल्दी से जवाब

दिया कि हे सत्य यह जो कुछ तू मन्दिर की मुंडेरों पर देखता है मेरे संध्या बन्दन का प्रभाव है मैंने जो रातों जाग जाग कर और माथा रगड़ते २ इस मन्दिर की देहली को घिसा कर ईश्वर की स्तुति बन्दना और बिनती प्रार्थना की है वही अब चिड़ियों की तरह पंख फैला कर आकाश को जाती हैं मानों ईश्वर के सामने पहुंच कर अब मुझे स्वर्ग का राजा बनाती हैं सत्य ने कहा कि राजा दीनबन्धु करुणासागर श्रीजगन्नाथ जगदीश्वर अपने भक्तों की बिनती सदा सुनता रहता है और जो मनुष्य शुद्ध हृदय और निष्कपट हो कर नम्रता और श्रद्धा के साथ अपने दुष्कर्म्मों का पश्चात्ताप अथवा उनके क्षमा होने का टुक भी निवेदन करता है वह उसका निवेदन उसी दम सूर्य चांद को बेध कर पार हो जाता है फिर क्या कारण कि यह सब अब तक मन्दिर की मुंडेर ही पर बैठे रहे आ चल देखें तो सही हम लोगों के पास जाने पर आकाश को उड़ जाते हैं या उसी जगह पर परकट कबूतरों की तरह फड़फड़ाया करते हैं भोज डरा लेकिन सत्य का साथ न छोड़ा जब मुंडेर पर पहुंचा तो क्या देखता है कि वह सारे जानवर जो दूर से ऐसे सुंदर दिखलायी देते थे मरे हुए पड़े हैं पंख नुचेखुसे और बहुतेरे बिल्कुल सड़े हुए यहां तक कि मारे बदबू के राजा का सिर भिन्ना उठा दो एक में जिन में कुछ दम बाक़ी था जो उड़ने का इरादा भी किया तो उनका पंख पारे की तरह भारी हो गया और उन्हें उसी ठौर दबा रक्खा तड़फ़ा ज़रूर किये पर उड़ने ज़रा भी न दिया सत्य बोला भोज बस यही तेरे पुण्यकर्म्म हैं इन्हीं स्तुति बन्दना औ बिनती प्रार्थना के भरोसे पर तू स्वर्ग में जाया चाहता है सूरत तो इनकी बहुत अच्छी है पर जान बिल्कुल नहीं तूने जो कुछ किया केवल लोगों के दिखलाने को जी से कुछ भी नहीं जो तू एक बार भी जी से पुकारा होता कि दीनबंधु दीनानाथ दीनहितकारी मुझ पापी महा अपराधी डूबते हुए को बचा और कृपादृष्टि कर तो वह तेरी पुकार तीर की तरह तारों से पार पहुंची होती राजा ने सिर नीचा कर लिया उत्तर कुछ न बन आया सत्य ने कहा कि भोज अब आ फिर इस मन्दिर के अन्दर चलें और वहां तेरे मन के मन्दिर को जांचें यद्यपि मनुष्य के मनके मन्दिर में ऐसे ऐसे अंधेरे तहख़ाने और तलघरे पड़े हुए हैं कि उनको सिवाय सर्वदर्शी

घटघट अन्तर्यामी सकल जगतस्वामी के और कोई भी नहीं देख अथवा जांच सकता तोभी तेरा परिश्रम व्यर्थ न जावेगा राजा उस सत्य के पीछे खिंचा खिंचा फिर मन्दिर के अंदर घुसा पर अब तो उसका हाल ही कु[illegible]स कुछ हो गया सचमुच सपने का खेल सा दिखलायी दि[illegible]चांदी की सारी चमक जाती रही सोने की बिल्कुल दमक उ[illegible]ड़गयी दोनों में लोहे की तरह मोर्चा लगा हुआ और जहां जहां से मुलम्मा उड़ गया था भीतर का ईंट पत्थर कैसा बुरा दिखलायी देता था जवाहिरों की जगह केवल काले काले दाग़ रहगये थे और संगमर्मर की चट्टानों में हाथ हाथ भर गहरे गढ़े पड़ गये थे॥ राजा यह देख कर भैंचक सा रह गया औसान जाते रहे हक्का बक्का बनगया धीमी अवाज़ से पूछा कि यह टिड्डी दल की तरह इतने दाग़ इस मन्दिर में कहां से आये जिधर मैं निगाह उठाता हूं सिवाय काले काले दाग़ों के और कुछ भी नहीं दिखलायी देता ऐसा तो छीपी छींट भी नहीं छापेगा और न सीतला से बिगड़ा किसी का चिहरा देख पड़ेगा सत्य बोला कि राजा ये दाग़ को तुझे इस मन्दिर में दिखलायी देते हैं वे दुर्बचन हैं जो दिनरात तेरे मुख से निकला किये हैं याद तो कर तूने क्रोध में आकर कैसी कड़ी कड़ी बातें लोगों को सुनायी हैं क्या खेल में और क्या अपना अथवा दूसरे का चित्त प्रसन्न करने को क्या रुपया बचाने अथवा अधिक लाभ पाने को और दूसरे का देश अपने हाथ में लाने अथवा किसी बराबरवाले से अपना मतलब निकालने और दुशमनों को नीचा दिखलाने को कितना झूठ बोला है अपने ऐब छिपाने और दूसरे की आंखों में अच्छा मालूम होने अथवा झूठी तारीफ़ पाने के लिये कैसी कैसी शेख़ियां हांकी हैं अपने को औरों से अच्छा और औरों को अपने से बुरा दिखलाने को कहां तक बातें बनायी हैं तो अब कुछ भी याद न रहा बिल्कुल् एकबारगी भूल गया पर वहां वह तेरे मुंह से निकलते ही बही में दर्ज हुआ तू इन दाग़ों के गिनने में असमर्थ है पर उस घटघट निवासी अनन्त अविनासी को एक एक बात जो तेरे मुंह से निकली है याद है और याद रहेगी उसके निकट भूत और भविष्य दोनों वर्त्तमान सा है॥ भोज ने सिर न उठाया पर उसी दबी ज़ुबान से इतना मुंह से और निकाला कि दाग़ तो दाग़ पर ये हाथ २ भर के गढ़े क्यों कर पड़ गये सोने

[illegible] मैं मोर्चा लग कर ये ईंट पत्थर कहां से दिखलायी देने लगे॥ सत्य ने [illegible] कि राजा क्या तूने कभी किसी को कोई लगती हुई बात नहीं कही अथवा बोली ठोली नहीं मारी अरे नादान यह बोली ठोली तो गोली से अधिक काम कर जाती है तू तो इन गढ़ों ही को देख कर रोता है पर तेरे ताने तो बहुतों की छातियों से पार हो गये जब अहंकार का मोर्चा लगा तो फिर यह दिखलावे का मुलम्मा कब तक ठहर सकता है स्वार्थ और अश्रद्धा का ईंट पत्थर प्रगट हो आया राजा को इस अर्से में चिमगादड़ों ने बहुत तंग कर रक्खा था मारे बू के सिर फटा जाता था भनगे और पतंगों से सारा मकान भरगया था बीच बीच में पंखवाले सांप और बिच्छू भी दिखलायी देते थे राजा घबरा कर चिल्ला उठा कि यह मैं किस आफ़त में पड़ा इन कम्बख़्तों को यहां किसने आने दिया। सत्य बोला राजा सिवाय तेरे इन को यहां और कौन आने देगा तूही तो इन सब को लाया है यह सब तेरे मन की बुरी बासना हैं तूने समझा था कि जैसे समुद्र में लहरें उठा और मिटा करती हैं उसी तरह मनुष्य के मन में भी संकल्प की मौज़ें उठ कर मिटजाती हैं पर रे मूढ़ याद रख कि आदमी के चित्त में ऐसा सोच बिचार कोई नहीं आता जो जगत्कर्त्ता प्राणदाता परमेश्वर के साम्हने प्रत्यक्ष नहीं हो जाता यह चिमगादड़ और भनगे और सांप बिच्छू और कीड़े मकोड़े जो तुझे दिखलायी देते हैं वे सब काम क्रोध लोभ मोह मत्सर अभिमान मद ईर्षा के संकल्प विकल्प हैं जो दिन रात तेरे अन्तःकरण में उठा किये और इन्हीं चिमगादड़ और भनगे और सांप बिच्छू और कीड़े मकोड़ों की तरह तेरे हृदय के आकाश में उड़ते रहे क्या कभी तेरे जी में किसी राजा की ओर से कुछ द्वेष नहीं रहा या उसके मुल्क माल पर लोभ नहीं आया या अपनी बड़ाई का अभिमान नहीं हुआ या दूसरे की सुन्दर स्त्री देख कर उस पर दिल न चला। राजा ने एक बड़ी लंबी ठंढी सांस ली और अत्यन्त निरास होके यह बात कही कि इस संसार में ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जो कह सके कि मेरा हृदय शुद्ध और मन में कुछ भी पाप नहीं इस संसार में निष्पाप रहना बड़ा कठिन है जो पुण्य करना चाहते हैं उस में भी पाप निकल आता है इस संसार में पाप से रहित कोई भी नहीं ईश्वर के साम्हने

घटघट अन्तर्यामी सकल जगतस्वामी के और कोई भी नहीं देख अथवा जांच सक्ता तोभी तेरा परिश्रम व्यर्थ न जावेगा राजा उस सत्य के पीछे खिंचा खिंचा फिर मन्दिर के अंदर घुसा पर अब तो उसका हाल ही कुछ से कुछ हो गया सचमुच सपने का खेल सा दिखलायी दिया चांदी की सारी चमक जाती रही सोने की बिल्कुल् दमक् उड़गयी दोनों में लोहे की तरह मोर्चा लगा हुआ और जहां जहां से मुलम्मा उड़ गया था भीतर का ईंट पत्थर कैसा बुरा दिखलायी देता था जवाहिरों की जगह केवल काले काले दाग़ रहगये थे और संगमर्मर की चट्टानों में हाथ हाथ भर गहरे गढ़े पड़ गये थे ॥ राजा यह देख कर भैंचक्र सा रह गया औसान जाते रहे हक्का बक्का बनगया धीमी अवाज़ से पूछा कि यह टिड्डी दल की तरह इतने दाग़ इस मन्दिर में कहां से आये जिधर मैं निगाह उठाता हूं सिवाय काले काले दाग़ों के और कुछ भी नहीं दिखलायी देता ऐसा तो छीपी छींट भी नहीं छापेगा और न सीतला से बिगड़ा किसी का चिहरा देख पड़ेगा सत्य बोला कि राजा ये दाग़ को तुझे इस मन्दिर में दिखलायी देते हैं वे दुर्बचन हैं जो दिनरात तेरे मुख से निकला किये हैं याद है कर तूने क्रोध में आकर कैसी कड़ी कड़ी बातें लोगों को सुनायी हैं क्यों खेल में और क्या अपना अथवा दूसरे का चित्त प्रसन्न करने को क्या रुपया बचाने अथवा अधिक लाभ पाने को और दूसरे का देश अपने हाथ में लाने अथवा किसी बराबरवाले से अपना मतलब निकालने और दुशमनों को नीचा दिखलाने को कितना झूठ बोला है अपने ऐब छिपाने और दूसरे की आंखों में अच्छा मालूम होने अथवा झूठी तारीफ़ पाने के लिये कैसी कैसी शेख़ियां हांकी हैं अपने को औरों से अच्छा और औरों को अपने से बुरा दिखलाने को कहां तक बातें बनायी हैं तो अब कुछ भी याद न रहा बिल्कुल् एकबारगी भूल गया पर वहां वह तेरे मुंह से निकलते ही बही में दर्ज हुआ तू इन दाग़ों के गिनने में असमर्थ है पर उस घटघट निवासी अनन्त अविनासी को एक एक बात जो तेरे मुंह से निकली है याद है और याद रहेगी उसके निकट भूत और भविष्य दोनों वर्त्तमान सा है ॥ भोज ने सिर न उठाया पर उसी दबी ज़ुबान से इतना मुंह से और निकाला कि दाग़ तो दाग़ पर ये हाथ २ भर के गढ़े क्यों कर पड़ गये सोने

चांदी में मोर्चा लग कर ये ईंट पत्थर कहां से दिखलायी देने लगे॥ सत्य ने कहा कि राजा क्या तूने कभी किसी को कोई लगती हुई बात नहीं कही अथवा बोली ठोली नहीं मारी अरे नादान यह बोली ठोली तो गोली से अधिक काम कर जाती है तू तो इन गढ़ों ही को देख कर रोता है पर तेरे ताने तो बहुतों की छातियों से पार हो गये जब अहंकार का मोर्चा लगा तो फिर यह दिखलावे का मुलम्मा कब तक ठहर सकता है स्वार्थ और अश्रद्धा का ईंट पत्थर प्रगट हो आया राजा को इस अर्से में चिमगादड़ों ने बहुत तंग कर रक्खा था मारे बू के सिर फटा जाता था भनगे और पतंगों से सारा मकान भरगया था बीच बीच में पंखवाले सांप और बिच्छू भी दिखलायी देते थे राजा घबरा कर चिल्ला उठा कि यह मैं किस आफ़त में पड़ा इन कम्बख़्तों को यहां किसने आने दिया। सत्य बोला राजा सिवाय तेरे इन को यहां और कौन आने देगा तूही तो इन सब को लाया है यह सब तेरे मन की बुरी बासना हैं तूने समझा था कि जैसे समुद्र में लहरें उठा और मिटा करती हैं उसी तरह मनुष्य के मन में भी संकल्प की मौज़ें उठ कर मिटजाती हैं पर रे मूढ़ याद रख कि आदमी के चित्त में ऐसा सोच बिचार कोई नहीं आता जो जगत्कर्त्ता प्राणदाता परमेश्वर के साम्हने प्रत्यक्ष नहीं हो जाता यह चिमगादड़ और भनगे और सांप बिच्छू और कीड़े मकोड़े जो तुझे दिखलायी देते हैं वे सब काम क्रोध लोभ मोह मत्सर अभिमान मद ईर्षा के संकल्प विकल्प हैं जो दिन रात तेरे अन्तःकरण में उठा किये और इन्हीं चिमगादड़ और भनगे और सांप बिच्छू और कीड़े मकोड़ों की तरह तेरे हृदय के आकाश में उड़ते रहे क्या कभी तेरे जी में किसी राजा की ओर से कुछ द्वेष नहीं रहा या उसके मुल्क माल पर लोभ नहीं आया या अपनी बड़ाई का अभिमान नहीं हुआ या दूसरे की सुन्दर स्त्री देख कर उस पर दिल न चला। राजा ने एक बड़ी लंबी ठंढी सांस ली और अत्यन्त निरास होके यह बात कही कि इस संसार में ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जो कह सके कि मेरा हृदय शुद्ध और मन में कुछ भी पाप नहीं इस संसार में निष्पाप रहना बड़ा कठिन है जो पुण्य करना चाहते हैं उस में भी पाप निकल आता है इस संसार में पाप से रहित कोई भी नहीं ईश्वर के साम्हने

पवित्र पुण्यात्मा कोई भी नहीं सारा मन्दिर बरन सारा धरती आकाश गूंज उठा कोई भी नहीं कोई भी नहीं। सत्य ने जो आंख उठा कर उस मन्दिर की एक दीवार की तरफ़ देखा तो वह उसी दम् संगमर्मर से आईना बन गया राजा से कहा कि अब टुक इस आईने का भी तमाशा देख और जो कर्त्तव्य करमों के न करने से तुझे पाप लगे हैं उनका भी हिसाब ले॥ राजा उस आईने में क्या देखता है कि जिस प्रकार बरसात की बढ़ी हुई किसी नदी में जल के प्रवाह बहे जाते हैं उस प्रकार अनगिनत सूरतें एक ओर से निकलती और दूसरी ओर अलोप होती चली जाती हैं कभी तो राजा को वे सब भूखे और नंगे इस आईने में दिखलायी देते जिन्हें राजा खाने पहिरने को दे सकता था पर न देकर दान का रुपया उन्हीं हट्टे कट्टे मोटे मुस्टंड खाते पीते हुओं को देता रहा जो उसकी ख़ुशामद करते थे या किसी की सिफ़ारिश ले आते थे या उसके कार्दारों को घूंस देकर मिला लेते थे या सवारी के समय मांगते मांगते और शोर गुल् मचाते मचाते उसे तंग कर डालते थे या दर्बार में आकर उसे लज्जा के भंवर में गिरा देते थे या झूठा छापा तिलक लगा कर उसे मकर के जाल में फंसा लेते थे या जन्मपत्र में भले बुरे ग्रह बतला कर कुछ धमकी भी दिखला देते थे या सुंदर कवित्त और श्लोक पढ़ कर उस के चित्त को लुभाते थे कभी वे दीन दुखी दिखलायी देते जिन पर राजा के कारदार ज़ुल्म किया करते थे और उसने कुछ भी उसकी तहक़ीक़ात और उपाय न की कभी उन बीमारों को देखता जिनका चंगा करादेना राजा के इख़्तियार में था कभी वे व्यथा के जले और बिपत्त के मारे दिखलायी देते जिनका जी राजा के दो बात कहने से ठंडा और संतुष्ट हो सकता था कभी अपने लड़के लड़कियों को देखता जिन्हें वह पढ़ा लिखाकर अच्छी अच्छी बातें सिखा कर बड़े बड़े पापों से बचा सकता था कभी उन गांव और इलाक़ों को देखता जिन में कूए तालाव खुदवाने और किसानों को मदद देने और उन्हें खेती बारी की नई २ तर्कीबें बतलाने से हज़ारों ग़रीबों का भला कर सकता था कभी उन टूटे हुए पुल और रास्तों को देखता जिन्हें दुरुस्त करने से वह लाखों मुसाफ़िरों को आराम पहुंचा सकता था राजा से अधिक देखा न जा सका थोड़ी देर में घबराकर हाथों से अपनी

आंखों को ढांप लिया वह अपने घमंड में उन सब कामों को तो सदा याद रखता था और उनका चरचा किया करता जिन्हें वह अपनी समझ में पुण्य के निमित्त किये हुए समझा था पर उन कर्त्तव्य कामों का कभी टुक सोच न किया जिन्हें अपनी उन्मत्तता से अचेत हो कर छोड़ दिया था। सत्य बोला राजा अभी से क्यों घबरा गया आ इधर आ इस दूसरे आईने में मैं तुझे अब उन पापों को दिखलाता हूं जो तूने अपनी उमर में किये हैं। राजा ने हाथ जोड़े और पुकारा कि बस महाराज बस कीजिये जो कुछ देखा उसी में मैं तो मिट्टी हो गया कुछ भी बाक़ी न रहा अब आगे क्षमा कीजिये पर यह तो बतलाइये कि आपने यहां आकर मेरे शर्बत में क्यों ज़हर घोला और पकी पकायी खीर में सांप का बिष उगला और आपने मेरे आनंद को इस मन्दिर में आके नाश में मिलाया जिसे मैंने सर्वशक्तिमान् भगवान् के अर्पन किया है चाहे जैसा वह बुरा और अशुद्ध क्यों न हो पर मैंने तो उसी के निमित्त बनाया है। सत्य ने कहा ठीक पर यह तो बतला कि भगवान् इस मन्दिर में बैठा है यदि तूने भगवान् को इस मन्दिर में बिठाया होता तो फिर वह अशुद्ध क्यों रहता ज़रा आंख उठा कर उस मूर्त्ति को तो देख जिसे तू जन्म भर पूजता रहा है राजा ने जो आंख उठायी तो क्या देखता है कि वहां उस बड़ी ऊंची बेदी पर उसी की मूर्त्ति पत्थर की गढ़ी हुई रक्खी है और अभिमान की पगड़ी बांधे हुए सत्य ने कहा कि मूर्ख तूने जो काम किये केवल अपनी प्रतिष्ठा के लिये इसी प्रतिष्ठा प्राप्त होने की सदा तेरी भावना रही और इसी प्रतिष्ठा के लिये तूने अपनी आप पूजा की रे मूर्ख सकल जगत्स्वामी घटघट अंतर्यामी क्या ऐसे मनरूपी मन्दिरों में भी अपना सिंहासन बिछने देता है जो अभिमान और प्रतिष्ठा प्राप्ति की इच्छा इत्यादि से भरा है ये तो उसकी बिजली पड़ने के योग्य हैं। सत्य का इतना कहना था कि सारी पृथ्वी एकबारगी कांप उठी मानों उसी दम टुकड़ा टुकड़ा हुआ चाहती थी आकाश में ऐसा शब्द हुआ कि जैसा प्रलय काल का मेघ गरजा मन्दिर की दीवार चारों ओर से अड़ अड़ा कर गिर पड़ी मानों उस पापी राजा को दबाही लेना चाहतीथी और उस अहंकार की मूर्त्ति पर ऐसी एक बिजली गिरी कि वह धरती पर औंधे मुंह आपड़ी। त्राहि मां त्राहि मां मैं डूबा

कह के भोज जो चिल्लाया आंख उस की खुलगयी और सपना सपना हो गया ॥ इस अर्से में रात बीत कर आस्मान के किनारों पर लाली दौड़ आयी थी चिड़ियां चहचहा रही थीं एक ओर से सीतल मंद सुगन्ध पवन चली आती थी दूसरी ओर से बीन और मृदङ्ग की ध्वनि बंदीजन राजा का जस गाने लगे हर्कारे हर तरफ़ काम को दौड़े कमल खिले कुमुद कुम्हलाये राजा पलंगसे उठा पर जी भारी माथा थामे हुए न हवा अच्छी लगती थी न गाने बजाने की कुछ सुध बुध थी उठतेही पहले यह हुक्म दिया कि इस नगर में जो अच्छे से अच्छे पंडित हों जल्द उनको मेरे पास लाओ मैंने एक सपना देखा है कि जिसके आगे अब यह सारा खटराग सपना मालूम होता है उस सपने के स्मरण ही से मेरे रोंकटे खड़े हुए जाते हैं राजा के मुख से हुक्म निकलने की देर थी चोपदारों ने तीन पंडितों को जो उस समय वसिष्ठ याज्ञवल्क्य और बृहस्पति के समान प्रख्यात थे बात की बात में राजा के साम्हने ला खड़ा किया ॥ राजा का मुंह पीला पड़ गया था माथे पर पसीना हो आया था पूछा कि वह कौनसा उपाय है जिससे यह पापी मनुष्य ईश्वर के कोप से छुटकारा पावे उन में से एक बड़े बूढ़े पंडित ने आशीर्बाद देकर निवेदन किया कि धर्म्मराज धर्म्मावतार यह भय तो आपके शत्रुओं को होना चाहिये आपसे पवित्र पुण्यात्मा के जी में ऐसा संदेह क्यों उत्पन्न हुआ आप अपने पुण्य के प्रभाव का जामा पहन के बे खटके परमेश्वर के साम्हने जाइये न तो वह कहीं से फटा कटा है और न किसी जगह से मैला कुचैला हुआ है ॥ राजा क्रोध कर के बोला कि बस अधिक अपनी बाणी को परिश्रम न दीजिये और इसी दम अपने घर की राह लीजिये क्या आप फिर उस पर्दे को डाला चाहते हैं जो सत्य ने मेरे साम्हने से हटाया और बुद्धि की आंखों को बंद किया चाहते हैं जिन्हें सत्य ने खोला उस पवित्र परमात्मा के साम्हने अन्याय कभी नहीं ठहर सकता मेरे पुण्य का जामा उसके आगे निरा चीथड़ा है यदि वह मेरे कामों पर निगाह करेगा तो नाश हो जाऊंगा मेरा कहीं पता भी न लगेगा। इस में दूसरा पंडित बोल उठा कि महाराज परब्रह्म परमात्मा जो आनंद स्वरूप है उस की दया के सागर का कब किसी ने वारापार पाया है वह क्या हमारे इन छोटे छोटे कामों पर निगाह

किया करता है एक कृपादृष्टि से सारा बेड़ा पार लगा देता है। राजा ने आंखें दिखला के कहा कि महाराज आप भी अपने घर को सिधारिये आपने ईश्वर को ऐसा अन्यायी ठहरा दिया कि वह किसी पापी को सज़ा ही नहीं देता सब धान बाईस पसेरी तौलता है मानों हरभोंगपुर का राज करता है इसी संसार में क्यों नहीं देखलेते जो आम बोता है वह आम खाता है और जो बबूल लगाता है वह कांटे चुनता है तो क्या उस लोक में जो जैसा करेगा सर्वदर्शी घटघट अंतर्यामी से उसका बदला वैसा ही न पावेगा सारी सृष्टि पुकारे कहती है और हमारा अन्तःकरण भी इस बात पर गवाही देता है कि ईश्वर अन्याय कभी नहीं करेगा जो जैसा करेगा वैसा ही उससे उसका बदला पावेगा। तब तीसरा पण्डित आगे बढ़ा और यों ज़ुबान खोली कि महाराजाधिराज परमेश्वर के यहां से हम लोगों को वैसा ही बदला मिलेगा कि जैसा हमलोग काम करते हैं इस में कुछ भी संदेह नहीं आप बहुत यथार्थ फ़र्माते हैं परमेश्वर अन्याय कभी नहीं करेगा पर यह इतने प्रायश्चित और होम और यज्ञ और जप तप तीर्थयात्रा किस लिये बनाये गये हैं यह इसी लिये हैं कि जिस में परमेश्वर हम लोगों का अपराध क्षमा करे और बैकुंठ में अपने पास रहने को ठौर देवे। राजा ने कहा देवता जी कल तक तो मैं आपकी सब बात मान सक्ता था लेकिन अब तो मुझे इन कामों में भी ऐसा कोई नहीं दिखलायी देता जिसके करने से यह पापी मनुष्य पवित्र पुण्यात्मा हो जावे वह कौनसा जप तप तीर्थयात्रा होम यज्ञ और प्रायश्चित है जिसके करने से हृदय शुद्ध हो और अभिमान न आजावे आदमी का फुसला लेना तो सहज है पर उस घटघट के अन्तर्यामी को कोई क्योंकर फुसलावे जब मनुष्य का मनही पाप से भरा हुआ है तो फिर उस से पुण्यकर्म कोई कहां बन आवे पहले आप उस स्वप्न को सुनिये जो मैंने रात को देखा है तब फिर पीछे वह उपाय बतलाइये जिस से पापी मनुष्य ईश्वर के कोप से छुटकारा पाता है॥

निदान राजा ने जो कुछ रात को स्वप्न में देखा था सब ज्यों का त्यों उस पण्डित को कह सुनाया पण्डित जी तो सुनते ही अवाक होगये सिर झुका लिया राजा ने निरास होकर चाहा कि तुषानल में जल मरे पर एक

परदेशी आदमी सा जो इन पण्डितों के साथ बिना बुलाये घुस आया था सोचता बिचारता उठ कर खड़ा हुआ और धीरे से यों निवेदन किया कि महाराज हम लोगों का कर्त्ता ऐसा दीनबंधु कृपासिंधु है कि अपने मिलने की राह आपही बतला देता है आप निरास न हूजिये पर उस राह को ढूंढ़िये आप इन पण्डितों के कहने में न आइये पर उसी से उस राह पाने की सच्चे जी से मदद मांगिये हे पाठकजनों क्या तुम भी भोज की तरह ढूंढ़ते हो और भगवान से उसके मिलने की प्रार्थना करते हो भगवान तुम्हें शीघ्र ऐसी बुद्धि दे और अपनी राह पर चलावे यही हमारा अन्तःकरण से आशीर्वाद है ॥ जिन ढूंढ़ा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ ॥

शकुन्तला   सेगमलाल

॥ शकुन्तला ॥

अंक १

(स्थान बन)

(दुष्यन्त रथ पर चढ़ा धनुष बाण लिये हरिण को खेदता सारथी सहित आया)

सारथी। (पहले हरिण की ओर फिर राजा की ओर देखकर) महाराज जब मैं इस करसालय पर दृष्टि करता हूं और फिर आपको धनुष चढ़ाये देखता हूं तो साक्षात ऐसा ध्यान बंधता है मानों पिनाक संधान किये शिवजी शूकर के पीछे जाते हैं॥

दुष्यन्त। इस मृग ने हमको बहुत थकाया है देखो कभी सिर झुकाये रथ को फिर फिर देखता चौकड़ी भरता है कभी तीर लगने के डर से सिमटता है अब देखो हांफता हुआ अधखुले मुख से घास खाने को ठिठका है फिर देखो कैसी छलांग भरी है कि धरती से ऊपर ही दिखायी देता है देखो अब इतने बेग से जाता है कि दिखायी भी सहज नहीं पड़ता॥

सारथी। महाराज अब तक धरती ऊंची नीची थी इससे मैंने घोड़े रोक रोक कर चलाये थे और इसी से वह कुरंग दूर निकल गया है परंतु अब भूमि एकसी आयी दोही सरपट में लेलेंगे॥

दुष्यन्त। अब घोड़ों की रास छोड़ो॥

सारथी। जो आज्ञा (पहले रथ को भरदौड़ चलाया फिर मंदा किया) देखिये रास छोड़ते ही घोड़े सिमट कर कैसे झपटे कि खुरों की धूल भी साथ न लगी केश खड़े करके और कनौती उठाकर घोड़े दौड़े क्या हैं उड़ आये हैं॥

दुष्यन्त। सत्य है ऐसे झपटे कि छिनभर में हरिण से आगे बढ़ आये जो वस्तु पहले दूर होने के कारण छोटी दिखाई देती थीं सो अब

बड़ी जान पड़ती हैं और जो मिली हुई सी थीं सो अलग अलग निकलीं जो टेढ़ी थीं सो सीधी हो गयीं पहियों के बेग से थोड़े काल तक तो दूर और नगीच में कुछ अंतरही न रहा था अब देखो हम इसे गिराते हैं (धनुष पर बान चढ़ाता हुआ)

(नेपथ्य में) इसे मत मारो यह आश्रम का मृग है ॥

सारथी। (शब्द सुनता और देखता हुआ) महाराज बाण के सन्मुख हरिण तो आया परन्तु ये दो तपस्वी नाहीं करते हैं कि इसे मारो मत॥

दुष्यन्त। अच्छा तो घोड़ों को रोको ॥

सारथी। जो आज्ञा (रास खैंचता हुआ)

(एक तपस्वी और उसका चेला आया)

तपस्वी। (बांह उठाकर) हे क्षत्री यह मृग आश्रम का है इस को मत मारो देखो इस को मत मारो इस के कोमल शरीर में जो बाण लगेगा सो मानों रूई के पुंज में आग लगेगी कहां तुम्हारे बज्रबाण कहां इस के अल्पप्राण हे राजा बाण को उतार लो यह तो दुखियों की रक्षा के निमित्त है निरपराधियों पर चलाने को नहीं है ॥

दुष्यन्त। (नमस्कार करके) लो मैं तीर को उतारे लेता हूं (बाण उतार लिया)

तपस्वी। (हर्ष से) हे पुरुकुलदीपक आप को यही उचित है लो हम भी आशीर्वाद देते हैं कि आप के आपही सा चक्रवर्ती और धर्म्मात्मा पुत्र हो ॥

चेला। (दोनों हाथ उठाकर) आप का पुत्र धर्मज्ञ और चक्रवर्ती हो ॥

दुष्यन्त। (प्रणाम करके) ब्राह्मणों का बचन सिरमाथे ॥

तपस्वी। हे राजा हम यज्ञ के लिये समिध लेने जाते हैं आगे मालिनी के तट पर गुरु कन्व का आश्रम दिखायी देता है आप को अवकाश हो तो वहां चलकर अतिथि सत्कार लीजिये उस जगह तपस्वियों के धर्म कार्य निर्विघ्न होते देखकर आप भी जानोगे कि मेरी इस भुजा से जिस में प्रत्यंचा की फटकार के चिन्ह भूषण हैं कितने सत्पुरुषों की रक्षा होती है ॥

दुष्यन्त। तुम्हारे गुरु आश्रम में हैं या नहीं ॥

तपस्वी । अपनी पुत्री शकुन्तला को अतिथि सत्कार की आज्ञा देकर उसी की ग्रहदशा निवारने के लिये सोमतीर्थ को गये हैं ॥

दुष्यन्त । अच्छा हम अभी आश्रम के दर्शन को चलते हैं उस कन्या को भी देखेंगे और वह हमारी भक्ति का प्रभाव महर्षी से कहेगी ॥

तपस्वी । आप सिधारिये हम भी अपने कार्य को जाते हैं (तपस्वी अपने चेले समेत गया)

दुष्यन्त । सारथी रथ को हांको इस पवित्र आश्रम के दर्शन करके हम अपना जन्म सफल करें ॥

सारथी । जो आज्ञा (रथ बढ़ाया)

दुष्यन्त । (चारों ओर देखकर) कदाचित् किसी ने बतलाया न होता तो भी यहां हम जान लेते कि अब तपोवन समीप है ॥

सारथी । महाराज ऐसे आपने क्या चिन्ह देखे ॥

दुष्यन्त । क्या तुमको चिन्ह नहीं दिखाई देते हैं देखो बृक्षों के नीचे तोतों के मुख से गिरा मुनि अन्न पड़ा है ठौ ठौर हिंगोट कूटने की चिकनी शिला रक्खी है मनुष्यों से हरिण के बच्चे ऐसे हिल रहे हैं कि हमारा आहट पाकर कुछ भी नहीं चौंके जैसे अपने खेल कूद में मगन थे वैसे ही बने हैं उधर देखो यज्ञ की सामग्री के छिलके बह बह कर आते हैं तिनसे नदी में कैसी लकीर सी बंध रही है फिर देखो बृक्षों की जड़ पवित्र बरहों के प्रवाह से धुलकर कैसी चमकती है और होम के धूंए से नये पत्तों की कान्ति कैसी धुंधुली हो रही है देखो उस उपवन के आगे की भूमि में जहां की दाभ यज्ञ के लिये कट गई है मृगछौने कैसे धीरे धीरे निधड़क चरते हैं ॥

सारथी । महाराज अब मैंने भी तपोवन के चिन्ह देखे ॥

दुष्यन्त । (थोड़ी दूर चलकर) सारथी तपोबन बासियों का अपमान न होना चाहिये रथ को यहीं ठहरा दो हम उतरलें ॥

सारथी । मैं रास खैंचता हूं महाराज उतरलें ॥

दुष्यन्त । (उतरकर और अपने भेष को देखकर) तपस्वियों के आश्रम में नम्रता से जाना कहा है इस लिये लो तुम मेरे राज चिन्हों और धनुषबान को लिये रहो (सारथी ने ले लिये) और जब तक मैं

तपोवन बासियों के दर्शन करके फिर आऊं तब तक तुम घोड़ों की पीठ ठंडी करलो ॥

सारथी । जो आज्ञा (बाहर गया) ॥

दुष्यन्त । (चारों ओर फिरकर और देखकर) अब मैं आश्रम में जाता हूं (आश्रम में घसा) आज दक्षिण भुजा क्यों फड़कती है (ठैरकर और कुछ सोचकर) यह ते। तपोवन है यहां इस अच्छे सगुन का क्या फल होना है कुछ आश्चर्य भी नहीं है होनहार कहीं नहीं रुकती ॥

(नेपथ्य में) प्यारी सखियो यहां आओ यहां आओ

दुष्यन्त । (कान लगाकर) इस फुलवारी के दक्षिण ओर क्या कुछ स्त्रियों का सा बोल सुनायी देता है (चारों ओर फिरकर और देखकर) अहा ये तो तपस्वियों की कन्या हैं अपने अपने बित्त अनुसार कोई छोटी कोई बड़ी गगरी बृक्ष सींचने को लिये जाती हैं धन्य है कैसी मनोहर इनकी चितवन है जैसे इन बनयुवतियों की छबि रनवास की स्त्रियों में मिलनी दुर्लभ है वैसे ही उपबन के फूलों को इस बन की लता अपने रंग और सुगंधि से लज्जित कर रही है (खड़ा होकर उनकी ओर देखने लगा)

(शकुन्तला अनसूया और प्रियम्बदा आयीं)

शकुन्तला । सखियो यहां आओ ॥

अनसूया । हे सखी शकुन्तला पिता कन्व को ये बिरुले तुझसे भी अधिक प्यारे होंगे नहीं तो तुझ सुकुमारि को इनके सीचने की आज्ञा न दे जाते तेरे चमेली से अंग पर दया लाते ॥

शकुन्तला । सखी निरी पिता की आज्ञा ही नहीं है मेरा भी इन बृक्षों में सहोदर कासा स्नेह होगया है ॥

(पेड़ को पानी दिया)

प्रियम्बदा । सखी शकुन्तला जिन पैाधों को तू सींच चुकी है सो तो इसी ग्रीष्म ऋतु में फूलेंगे अब चल उनको भी सींचें जिनके फूलने के दिन निकल गये हैं क्योंकि उनके सींचने से अधिक पुण्य होगा ॥

शकुन्तला । ठीक है (और बृक्षों को सींचती हुई)

दुष्यन्त। (चकित होकर आपही आप) कन्व की बेटी शकुन्तला यही है उस ऋषि का हृदय बड़ा कठोर होगा जिसने ऐसी सुकुमारि को ऐसा कठिन काम सौंपा है और बृक्षों की छाल के वस्त्र पहराये हैं इस सुन्दरी को जिसके देखते ही मन हाथ से निकला जाता है तपस्विनी बनाना ऐसा है जैसे नील कमल की पखुरी से सूखा छोंकर काटना बकले की कंचुकी इसको शोभा नहीं देती है जैसे नये फूल को पुराने पत्ते से ढांकना मेल नहीं खाता नहीं नहीं बकले का वस्त्र इस मोहनी के गात को शोभा देता ही है यह मैंने भूलकर कहा कि नहीं देता है क्योंकि कमल के फूल पर कायी भी अच्छी लगती है और पूर्ण चंद्र में काली रेखा भी खुलती है ऐसे ही इस पद्मिनी का अंग बकले पहरने से भी मनोहर दिखायी देता है सत्य है रूपवती को सभी सोहता है॥

शकुन्तला। (आगे देखकर) सखियो देखो पवन के झोकों से आल के पत्ते कैसे हिलते हैं मानों वह हम को उंगलियों से अपने निकट बुलाता है चलो वहीं चलें॥

(सब बृक्ष के निकट गयीं)

प्रियम्बदा। सखी यहां घड़ीक विश्राम ले लें॥

शकुन्तला। क्यों॥

प्रियम्बदा। इस लिये कि जब तक तू इस आम के नीचे खड़ी है यह ऐसा शोभायमान हो रहा है कि मानों इस से लता लिपट रही है॥

शकुन्तला। सखी इसी से तेरा नाम प्रियम्बदा हुआ है कि तू बात बहुत प्यारी कहती है॥

दुष्यन्त। (आपही आप) प्रियम्बदा ने बात प्यारी तो कही परन्तु सत्य भी कही क्योंकि शकुन्तला के अधर हैं सोई लता के नवीन पल्लव हैं भुजा हैं सोई बेलि हैं और नव यौवन है सोई बिकसित फूल हैं॥

शकुन्तला। (पानी का घड़ा झुका दिया)

अनसूया। सखी शकुन्तला इस लता को क्यों छोड़े जाती है जिसने पिता कन्व के आश्रम में तेरी ही भांति रक्षा पायी है॥

शकुन्तला । किसी दिन मैं आप अपने को न भूलजाऊं (लता के निकट गयी) सखी प्रियम्बदा मैं तुम्हें कुछ भले समाचार सुनाऊंगी ॥

प्रियम्बदा । क्या समाचार हैं सखी ॥

शकुन्तला । देखो यह माधवी लता यद्यपि इस के फूलने के दिन अभी नहीं आये हैं कैसी जड़ से चोटी तक कलियों से लद रही है (दोनों तुरन्त लता के निकट गयीं) ॥

प्रियम्बदा । सच्ची कह ॥

शकुन्तला । मैं सच्ची क्या कहूं तूही देख ले ॥

प्रियम्बदा । (बड़े चाव से) हे शकुन्तला इस सगुन के भरोसे पर मैं कहे देती हूं कि तुझे अच्छा बर मिलेगा और वह थोड़े ही दिनों में तेरा हाथ गहेगा ॥

शकुन्तला । (रिस सी होकर) आज तुझे क्या सूझी है ॥

प्रियम्बदा । सखी यह बात मैंने हंसी से नहीं कही हमने पिता कन्व के मुख से भी कुछ ऐसी ही सुनी है और इसी से तेरा सींचना इस लता को सफल हुआ है ॥

अनसूया । और इसी से इस लता को तैंने बड़े चावसे सींचा है ॥

शकुन्तला । माधवी लता तो मेरी बहिन है इसे क्यों न सींचती (पानी का घड़ा झुका दिया)

दुष्यन्त । (आपही आप) निश्चय यह ऋषि की बेटी सजाती स्त्री से नहीं है अथवा मेरे ही मन में कुछ सन्देह उपजा है परंतु इस पर मेरा चित्त ऐसा लगा है कि अवश्य यह छत्री के ब्याहने योग्य होगी नहीं तो सज्जनों के हृदय में जो कभी कुछ सम्भ्रम उपजता है तुरंत ही अंतःकरण के उत्साह से मिट जाता है मेरा मन इसके बस हुआ इस लिये निश्चय यह ब्राह्मण की बेटी नहीं है जो मेरे ब्याहने योग्य न हो भला हो सो हो इसका सत्य बृत्तान्त तो खोजना चाहिये ॥

शकुन्तला । (मुख फेरकर) दयी दयी यह ढीठ भौंरा नयी चमेली को छोड़ मेरे ही मुखपर बार बार गूंजता है (घबराती सी)

दुष्यन्त । (आपही आप) कितनी बेर हमने नगर की स्त्रियों को उड़ते भौंरे से कटाच करके मुख मोड़ते देखा है परंतु सदा बनावटही पायी

इस भौंरी के भौंह मरोड़ने और आंखें तिरछी करने में कैसा सीधापन है हे भौंरे तू बड़ा बड़भागी है कि इन चंचल नेत्रों की ओर को स्पर्श करता है और कानों के निकट ऐसा जाता है मानों कुछ रहस्य का संदेसा सुनावेगा जब तक वह हाथ उठाती है तू अमृत भरे होठों से रस ले जाता है ॥

शकुन्तला । यह ढीठ भौंरा न मानेगा अब यहां से अन्त चलूं (दूसरी ठौर गयी) अरी देखो यहां भी पापी ने पीछा न छोड़ा हे सखियो भौंरा मुझे सताता है इससे छुटाओ ॥

प्रियम्बदा । (मुसक्याकर) हम छुटानेवाली कौन हैं राजा दुष्यन्त छुड़ावेगा जो सब तपोबन का रखवाला है ॥

दुष्यन्त । (आपही आप) यह अवसर प्रगट होने का अच्छा है (थोड़ा सा आगे चलकर) मुझे डर किस का है परंतु (इतना कहफिर हटगया) इससे तो खुल जायगा कि मैं राजा हूं अब जो हो सो हो साधारण परदेसी बनकर इनसे अतिथि सत्कार मांगूं क्योंकि इनसे कुछ बात चीत तो अवश्य करनी चाहिये ॥

शकुन्तला । यहां भी भौंरे ने पीछा न छोड़ा अब कहां जाऊं (एक ओर को चलती हुई और जिधर भौंरा जाता है उधर देखती हुई) अरे दूर हो हे सखियो मैं जहां जाती हूं यह मेरे पीछे ही पीछे लगा फिरता है इससे मुझे बचाओ ॥

दुष्यन्त । (झट पट आगे बढ़कर) जब तक दुष्टों को दंड देनेवाला मैं पुरुवंशी पृथ्वी का रखवाला बना हूं तब तक कौन ऐसा है जो इन ऋषिकन्याओं को सताता है ॥

(तीनों चकित होकर देखने लगीं)

अनसूया । महाराज यहां सतानेवाला मनुष्य तो कोई नहीं है हमारी सखी को एक भौंरे ने घेरा था इससे यह भय खा गयी है (दोनों सखी शकुन्तला को देखती हुईं)

दुष्यन्त । (शकुन्तला के निकट जाकर) हे सुन्दरी तेरा तपोब्रत सफल हो (शकुन्तला लज्जित हो धरती की ओर देख चुप रह गयी)

अनसूया । इस अनोखे पाहुने को अच्छे आदर से लेना चाहिये ॥

प्रियम्बदा । आओ परदेसी सखी शकुन्तला तू जा कुटी में से कुछ फल फूल भेट को ले आ पांव धोने को जल नदी में से ले लेंगे (पेड़ सींचने के घड़ों की ओर देखती हुई)

दुष्यन्त । तुम्हारे मीठे बोलों ही से कलेजा ठंडा हो गया ॥

अनसूया । आओ पाहुने घड़ीक इस कदलीपत्र के आसन पै बिराजो यहां छाया सीतल है और आप परिश्रम करके आये हो यहां विश्राम लो ॥

दुष्यन्त । तुम भी तो थक गयी होगी आओ छिन भर बैठ लो ॥

अनसूया । (हौले शकुन्तला से) अतिथि का सन्मान करना उचित है आओ हम भी बैठें (सब बैठ गयीं)

शकुन्तला । (आपही आप) इस पाहुने को देखकर मेरे मनमें ऐसी बात उपजती है जो तपोबन के योग्य नहीं है ॥

दुष्यन्त । (एक एक करके सबको देखता हुआ) हे युवतियो जैसी बिधाता ने तुम को वेस और निकायी दी है प्रीति भी तुम्हारे आपस में अच्छी रक्खी है ॥

प्रियम्बदा । (हौले अनसूया से) सखी अनसूया यह नया अतिथि कहां से आया है जिस के अंग में सुकुमारता के संग गुरुता और बोली में मधुरता के साथ गंभीरता है ये लच्छन तो बड़े प्रतापियों के हैं ॥

अनसूया । (हौले प्रियम्बदा से) सखी मैं भी इसी सोच बिचार में हूं मेरे मन में आती है कि इससे कुछ पूछूं (प्रगट) तुम्हारे मधुर बचन सुनकर मुझे भ्यासती है कि तुम कोई राजकुमार हो सो कहो कौन से राजवंश के भूषण हो और कहां की प्रजा को बिरह में ब्याकुल छोड़ यहां पधारे हो क्या कारण है जिससे तुमने अपने कोमल गात को इस कठिन तपोबन में पीड़ित किया है ॥

शकुन्तला । (आपही आप) अरे मन तू आतुर मत हो धीरज धर तेरे हित की बात अनसूया ही कह रही है ॥

दुष्यन्त । (आपही आप) अब मैं क्योंकर प्रगट होऊं और कैसे छिपा रहूं हो सो हो इनसे बात तो करूंहींगा (प्रगट अनसूया से) हे ऋषिकुमारी मैं पुरुवंशी राजा के नगर में निवास करता हूं और पुरवंशियों ने मुझे राज्य के धर्मकार्य सौंप रक्खे हैं इसलिये आश्रम के दर्शन को आया हूं ॥

अनसूया। महात्मा तुम्हारे पधारने से इस बन के धर्मचारी भी सनाथ हुए॥

(शकुन्तला कुछ लज्जित और मोहित सी हो गयी और दोनों सखी कभी उस की ओर कभी राजा की ओर देखने लगीं)

अनसूया। (होले शकुन्तला से) कदाचित आज कन्व घर होते॥

शकुन्तला। तो क्या होता॥

अनसूया। इस पाहुने का आदर अनेक भांति करते॥

शकुन्तला। (रिससी होकर) चल परे हो तेरे मन में कुछ और ही है जो मैं तेरी न सुनूंगी॥

(अलग जा बैठी)

दुष्यन्त। (अनसूया और प्रियम्बदा से) हे युवतियो अब मैं भी तुम्हारी सखी का वृत्तात पूछता हूं॥

दोनों। यह आप की अनुग्रह है॥

दुष्यन्त। कन्व ऋषि तो ब्रह्मचारी हैं फिर यह तुम्हारी सखी उन की बेटी क्यों कर हुई॥

अनसूया। महाराज सुनों कुशिक के वंश में एक बड़ा प्रतापी राजर्षि है॥

दुष्यन्त। हां मैंने जान लिया तुम विश्वामित्र का नाम लोगी मैंने भी सुने हैं॥

अनसूया। उसी से हमारी इस सखी की उत्पत्ति है और कन्व इस के पिता ऐसे कहाते हैं कि जब इसका नाल भी नहीं कटा था तब उनको बन में पड़ी मिली थी और उन्हीं ने पाली पोसी है॥

दुष्यन्त। पड़ी मिली थी यह बात सुनकर तो मुझे आश्चर्य होता है अब इस की जड़से उत्पत्ति कहो॥

अनसूया। अच्छा सुनों मैं कहती हूं जब उस राजऋषि ने उग्र तप किया तब देवताओं ने शंका मान उस का तप डिगाने के निमित्त मेनका नाम अप्सरा भेजी॥

दुष्यन्त। सच्च है देवता ऐसे ही हैं औरों की तपस्या से डर जाते हैं भला फिर क्या हुआ॥

अनसूया । बसन्त ऋतु में मेनका की मोहनी छबि निरखते ही (इतना कह लज्जित हो गयी)

दुष्यन्त । आगे हमने जान लिया कि शकुन्तला सची की बेटी अप्सरा से है ॥

अनसूया । हां ॥

दुष्यन्त । (आपही आप) अब दैवने किया तो मनोरथ पूरा हुआ (प्रगट) क्यों न हो इसी से इस का ऐसा रूप है नहीं तो मनुष्य जाति की स्त्रियों में इतनी दमक कहां पाइये ॥

(शकुन्तला लाज से सिर झुकाकर बैठ गयी)

दुष्यन्त । (आपही आप) मेरी मनोकामना सिद्ध होने के लच्छन तो दिखायी देते हैं परंतु द्विविधा यही है कि सखी ने ब्याह की बात कहीं हंसी से न कही हो ॥

प्रियम्बदा । (हंसकर) पहले शकुन्तला की ओर फिर राजा की ओर देखती हुई) क्या आपके मन में कुछ कहने की है (शकुन्तला उंगली से बर्जती हुई)

दुष्यन्त । हां मेरे मन में इस अनूठे चरित के सुन्ने की अभी और अभिलाषा है ॥

प्रियम्बदा । महाराज जो कुछ कहो सो बहुत समझ बूझकर कहियो क्योंकि तपस्वी लोगों पर किसी का बस नहीं होता है ॥

दुष्यन्त । मैं यह पूछता हूं कि शृंगार रस के बैरी इस बानप्रस्थ नियम में तुम्हारी सखी ब्याह ही तक रहेगी या न सदा अपनी सी आंखोंवाली हरिणियों के संग खेलैगी ॥

प्रियम्बदा । हे महात्मा हमारी सखी परबस है और इसके बड़ों का यह संकल्प है कि इसी के समान बर मिले तो दें ॥

दुष्यन्त । समान बर मिलना तो बहुत कठिन है (आपही आप) अरे मन अब तू इसके मिलने की चाह कर तेरे संदेह का निवारण हो गया जिस को तू जलती आग समझा था सो तो गले का हार बनाने योग्य रत्न निकला ॥

शकुन्तला । (रिससी होकर) अनसूया तू मुझे यहां ठैरने न देगी ले मैं जाती हूं ॥

अनसूया । क्यों काहे को जाती है ॥

शकुन्तला । मैं गौतमी से जाकर कहूंगी कि अनसूया मुझे छेड़ती है (यह कह कर उठी)

अनसूया । हे सखी यह उचित नहीं है कि तू ऐसे पाहुने को बिना सत्कार किये छोड़कर चली जाय (शकुन्तला ने कुछ उत्तर न दिया चलखड़ी हुई)

दुष्यन्त । (ऐसे उठा मानों रोकेगा परंतु आपही रुक गया फिर आपही आप कहने लगा) अहा कभी मनुष्यों की कैसी मति भंग हो जाती है देखो मैंने तपस्वी की कन्या को चलने से रोकना चाहा और आसन से खड़ा भी हो गया कदाचित् धर्म न सम्हालता तो कैसा होता ॥

प्रियम्बदा । (शकुन्तला के निकट जाकर) सखी यहां से जाने न पावेगी ॥

शकुन्तला । (पीछे हटकर और भौंह चढ़ाकर) क्यों न जाने पाऊंगी मुझे कौन रोकनेवाला है ॥

प्रियम्बदा । सखी अपना बचन निबाहे तो अभी तुझे दो रूख सींचनें को और रहे हैं इस ऋन को चुकादे तब चलीजाना (बलकर रोकती हुई)

दुष्यन्त । बृक्ष सींचने को घड़ा उठाते उठाते तुम्हारी सखी थक गयी है देखो इसकी बांहें शिथिल हो गयी हैं लाल हथेली अधिक लाल पड़ गयी है छाती धुकधुकाती है मुख पर पसीने के बिन्दु मोती से ढरक रहे हैं चुटीला ढीला होकर कपोलों पर अलकें बिथुरती हैं उनको एक हाथ से थाम रही है यह ऋन मुझे यों चुकाने दो (अंगूठी प्रियम्बदा को दी और दोनों सखी मुदरी पर दुष्यन्त का नाम खुदा देखकर एक दूसरी की ओर चकितसी निहारने लगीं) इसके लेने से तुम यह संकोच मत करो कि यह राजा की वस्तु है क्योंकि मैं भी तो राजपुरुष हूं मुझे यह राजा से मिली है ॥

प्रियम्बदा । जो ऐसी है तो महात्मा इसे अपनी उंगली से न्यारी मत करो तुम्हारे कहने ही से ऋन चुक गया (मुसक्याकर अंगूठी फेर दी)

अनसूया । हे सखी शकुन्तला इस महात्मा ने दया करके तुझे ऋन से छुड़ा दिया अब चाहे तू चलीजा ॥

शकुन्तला । (आपही आप) जो मैं अपने बस में रही तो क्या इन बातों को भूलजाऊंगी (प्रगट) जाने की आज्ञा देनेवाली अथवा रोकनेवाली तुम कौन हो ॥

दुष्यन्त । (शकुन्तला की ओर देखकर आपही आप) जैसा मेरा मन इस पद्मिनी से उलझा है वैसाही इसका भी मुझ से अटका दिखायी देता है यही मनोरथ पूरा होने के उत्साह का कारण है यद्यपि यह मेरी बात में बात नहीं मिलाती है तो भी जब मैं कुछ कहता हूं बड़े चाव से कान लगा कर सुन्ती है मेरी ओर निधड़क खड़ी होती तो भी उसकी दृष्टि दूसरी ओर नहीं जाती है ॥

(नेपथ्य में) तपस्वियो आश्रम के जीवों की रक्षा करो राजा दुष्यन्त आखेट करता निकट आ पहुंचा है देखो घोड़ों की खुरतार से धूल उड़ उड़ कर तुम्हारे भीगे वस्त्रों पर जो वृक्षों के ऊपर सूख रहे हैं टीड़ो के समान गिरती है हे तपस्वियो यह हाथी हमारी तपस्या के विघ्न की मूर्त्ति होकर तपोबन में चलाआता है देखो वृक्ष के गुद्दों को दांतों से तोड़ता और पैरों में लता का लंगर डाले घूमता आता है देखो हमारे तप में इस ने कैसा विघ्न डाला है हाथी के भय से हरिणों का झुंड तित्तर बित्तर हो गया है और यह रथ को देख डरगया है इससे बन का नाश किये डालता है (ऋषि कुमारियों ने कान लगाकर सुना फिर चोंक पड़ीं)

दुष्यन्त । (आपही आप) अरे इन पुरवासियों ने मुझे ढूंढ़ते ढूंढ़ते यहां आकर बन में विघ्न डाला अब इनके पास जाना पड़ा ॥

प्रियम्वदा । हे महात्मा अब तो हम को इस मतवाले हाथी से डर लगता है आज्ञा दो तो अपनी कुटी को जायं ॥

अनसूया । सखी शकुन्तला तेरे लिये गोतमी अकुलाती होगी आ बेग बेग चली आ जिससे सब एक संग क्षेम कुशल से कुटी में पहुंचें ॥

शकुन्तला । (होले चलती हुई) आली मेरी तो पसली में पीर होती है मुझ से नहीं चला जाता ॥

दुष्यन्त । हे युवतियो तुम डरो मत निधड़क चली जाओ मैं इस आश्रम में कुछ विघ्न न होने दूंगा ॥ (सब उठ खड़ी हुईं)

दोनों । हे महात्मा जैसा तुम सरीखे पुरुषों का सत्कार होना चाहिये सो हम से नहीं बना है इसलिये हम यह कहते लजाती हैं कि कभी फिर भी दर्शन देना ॥

दुष्यन्त । ऐसा मत कहो तुम्हारे देखने ही से हमारा सत्कार होगया ॥

शकुन्तला । हे अनसूया एक तो मेरे पांव में दाभ की पैनी अनी लगी है दूसरे कुरे की डार में अंचल उलझा है नेक ठैरो तो इसे सुलझा लूं ॥

(दुष्यन्त की ओर देखती और ठिठकती हुई चली)

दुष्यन्त । (आह भरकर) हाय ये तो सब गयीं अब मैं कहां जाऊं हे दैव प्यारी शकुन्तला से कुछ काल और भेट क्यों न रही अब मुझ से नगर की ओर तो चला नहीं जाता है इससे साथवालों को बिदा कर के कहीं बन के नगीच ही डेरा करूंगा शकुन्तला के हाव भाव देखने की लालसा मेरे ृदय से कैसे जायगी शरीर तो आगे को चलता भी है परंतु मन पीछे ही रहा जाता है जैसे पवन के सन्मुख चलती पताका पीछे ही को उड़ती है ॥

(बाहर गया)

अंक २

स्थानबन के निकट चौगान में राजा के डेरे

(स्वास लेता हुआ और विषाद करता हुआ माढव्य आया)

माढव्य । इस मृगयाशील राजा की मित्रता से हम तो बड़े दुखी हैं मन में ऐसी आती है कि सब छोड़ छाड़ बैठ रहिये यहां तो ग्रीष्म की दुपहरी में भी यह मृग आया वह बराह गया उधर शार्दूल जाता है यही कहते इस बन से उस में उस से इस में पशुओं की भांति भागना रहता है कहीं छाया भी इतनी नहीं मिलती जहां कुछ विश्राम लिया जाय पहाड़ की नदी में बृक्षों के पत्ते गिर गिर कर सड़ गये हैं प्यास लगे तो उन्हीं का पानी पीना पड़ता है और खाने को शूल पर भूना मांस मिलता है सो भी कुसमय घोड़े के पीछे दौड़ते दौड़ते देह ढीली हो

जाती है और रात को नींदभर सोना नहीं मिलता फिर बड़े भोर ही दासीजाये मांस ही मांस पुकारते हैं और चलो बनको चलो बनको यह चिल्ला चिल्ला कर कान फोड़ते हैं ये दुःख तो थे ही तब तक एक नया घाव और हुआ कि हम से बिछुड़ कर राजा मृग के पीछे चलते चलते तपस्वियों के आश्रम में पहुंचा वहां मेरे अभाग्य से उसकी दृष्टि एक तपस्वी की कन्या पर जिस का नाम शकुन्तला है पड़गयी अब नगर का लैाटना कैसा इन्हीं कलेशों के सोच बिचार में सब रात मेरी आंख नहीं लगी जब तक राजा को देख न लूंगा तब तक न जानूंगा क्या गति मेरी होगी अब कब ऐसा होगा कि यहां से लैाट कर फिर राजा को सिंहासन पर बैठा देखूं (आगे को चला और देखा) अहह वह भेष बदले आता है हाथ में धनुष बाण तो है परन्तु सिरपर मुकुट की ठैार बन के फूलों की माला धरी है आता तो इधर ही को है अब मैं भी अंग भंग करके खड़ा हो जाऊं (लाठी टेककर खड़ा हुआ) चलो योंही विश्राम सही ॥

(ऊपर कहे हुए भेष से दुष्यन्त आया)

दुष्यन्त । (ऊंची स्वास लेकर आपही आप) क्या कीजै प्यारी का मिलना तो सहज नहीं है और मन मिलने को ऐसा तड़फता है यद्यपि अभी हमारी परस्पर प्रीति का फल नहीं मिला है परंतु दोनों के जी में मिलने की चाह लगी है (मुसक्याकर) जब किसी को किसी से लगती है तो यही सूझती है कि उस की भी मुझ से लगी होगी उस ने चाहे अपनी सखियों की ओर ही देखा हो परंतु मैंने यही जाना कि मुझी पर सनेह की दृष्टि की है फिर जब उसको सखियों ने अनखाया तब वह चाहे रिस ही हुई हो परंतु मेरे मन में यह भ्यासी कि यह भी कुछ कटाक्ष मुझी पर है सत्य है अपने प्रयोजन की बात देखने में प्रेमी जनों की दृष्टि बड़ी पैनी होती है ॥

माढव्य । (जैसे खड़ा था वैसे ही खड़ा रहा) हे मित्र मेरे हाथ पांव नहीं चलते हैं इस लिये केवल वचन ही से तुम को आशीर्वाद देता हूं आप की जय रहे ॥

दुष्यन्त । (उसकी ओर देखकर और मुसक्याकर) कहो सखा तुम्हारा अंग भंग क्यों हुआ ॥

माढव्य । अपनी उंगली से आंख कुचोकर आपही पूछते हो कि आंसू क्यों आये ॥

दुष्यन्त । हम समझे नहीं तुमने क्या कहा ॥

माढव्य । देखो वह बेत का बृक्ष नीचे को झुक गया है सो कहो अपने आप झुका है या नदी के प्रवाह से ॥

दुष्यन्त । नदी के प्रवाह से झुका होगा ॥

माढव्य । ऐसे ही मेरे अंग भंग होने के तुम्हीं कारण होगे ॥

दुष्यन्त । क्यों कर ॥

माढव्य । मैं पूछता हूं कि यह बात तुम को कब योग्य है कि ऐसे राजकाजों को भूल और ऐसे रनवास को त्याग यहां बन में बसो और बनबासियों के से काम करो नित्य कुत्तों और मृगों के पीछे दौड़ते दौड़ते मेरा तो अंग शिथिल हो गया है अब कृपा करके एक दिन विश्राम लेने दो ॥

दुष्यन्त । (आपही आप) इधर यह भी कहता है उधर मेरा चित्त भी ऋषिकुमारि की सुधि में आखेट से निरुत्साह हो रहा है अब मैं इस धनुष को प्यारी की सहवासी हरिणियों पर जिन की आंखों ने उसे भोली चितवन सिखायी है कैसे चलाऊंगा ॥

माढव्य । (राजा के मुख की ओर देखकर) तुम्हारे मन में जाने क्या सोच है मेरी बात तो ऐसी होगयी जैसे बन में रोना ॥

दुष्यन्त । (हंसकर) मेरे मन में यही है कि तुझ सखा की बात मानूं ॥

माढव्य । (प्रसन्न होकर) बड़ी आर्बल हो (उठखड़ा हुआ दुर्बलता का मिस करता हुआ)

दुष्यन्त । मित्र ठैरो हम को कुछ कहना है ॥

माढव्य । कहिये ॥

दुष्यन्त । जब तुम विश्राम ले चुको तब हम एक ऐसे काम में तुम से सहायता लेंगे जिस में कुछ दौड़ना भागना न पड़ेगा ॥

माढव्य । अहह क्या खांड़ के लड्डू खिलाओगे तो तो अभी अच्छा अवसर है ॥

दुष्यन्त । अच्छा अभी कहता हूं किसी द्वारपाल को बुलाओ ॥

(द्वारपाल आया)

द्वारपाल । (नमस्कार करके) स्वामी की क्या आज्ञा है ॥

दुष्यन्त । हे रैवतक तुम सेनापति को बुलाओ ॥

द्वारपाल । बहुत अच्छा (बाहर जाकर सेनापति को बुलालाया) आओ तुम्हारी ही राह देखते महाराज बैठे हैं ॥

सेनापति । (दुष्यन्त की ओर देखकर आपही आप) मृगया को बड़ोंने दोष दिया है और अनर्थ कहा है परंतु हमारे स्वामी को गुणदायक हुई है बार बार धनुष खैंचने से महाराज का शरीर कैसा कड़ा हो गया है कि धूप नहीं व्यापती न पसीना आता है स्वामी का शरीर यद्यपि दुर्बल है तो भी डील पहाड़ सा और बल हाथी का सा है (राजा के निकट जाकर प्रगट) स्वामी की जय हो महाराज इस बन में हमने आखेटी पशुओं के खोज देखे हैं यहां मृगया बहुत है आप कैसे बैठे हो ॥

दुष्यन्त । हे भद्रसेन इस माढव्य ने इस मृगया की निन्दा करके मेरा उत्साह मंद कर दिया है ॥

सेनापति । (होले माढव्य से) तुम अपनी बातपर बनेरहो मैं स्वामी के मन सुहाती कहूंगा (प्रगट) महाराज इस रांडके को बकने दीजिये भला आपही सोचो कि मृगया में गुण है या अवगुण एक तो यही गुण है कि इससे आहार पचकर उदर हलका हो जाता है और शरीर चलने फिरने के योग्य होता है देखिये क्रोध और भय से पशुओं की कैसी कैसी दशा होती है धनुषधारियों की यही बड़ाई है कि चलते बेझे को बेधलें मृगया को दोष लगाना मिथ्या है इससे उत्तम तो मन बहलाने की कोई बात ही नहीं है ॥

माढव्य । (रिससे) अरे राजा को तो मृगया की टेव लग गयी है तुझे क्या हुआ है जो तू ऐसी बातें कहता है बन में बहुत दौड़ता फिरता है किसी दिन कोई बूढ़ा रीछ तुझे स्यार के धोखे न पकड़ ले ॥

दुष्यन्त । हे सेनापति यह आश्रम का समीप है अब हम आखेट की बड़ाई करने में तुम्हारा पक्ष नहीं ले सकते हैं आज अरनों को आनन्द से तलावों में लोटने दो हरिणों को घनी छाया में बैठकर रोंथ करने दो सूअरों को अधसूखे पोखरों में मोथे की जड़ खोद खाने दो मेरे धनुष की प्रत्यंचा ढीली हो गयी है आज इसे भी विश्राम मिलेगा ॥

सेनापति । जो इच्छा महाराज की ॥

दुष्यन्त । आगे जो कमनैत बढ़ गये हैं उनको लौटालो और सेना के लोगों को बर्ज दो कि इस तपोबन में कुछ विघ्न न डालें उनको समझा दो कि यद्यपि तपस्वी लोगों में क्षमा बहुत होती है परंतु जब उनको क्रोध आता है तो उनके भीतर दाहक शक्ति भड़क उठती है जैसे सूर्य्यकान्ति मणि का स्वभाव है कि वैसे तो छूने से ठंढी लगती है परन्तु सूर्य्य के सन्मुख होते ही आग के समान हो जाती है ॥

सेनापति । जो आज्ञा महाराज की ॥

माढव्य । चल जा ऐसे ही तेरा मुख बिगड़ता रहै ॥

(सेनापति गया)

दुष्यन्त । (सेवकों की ओर देखकर) तुम भी अपना भेष उतार डालो और रैवतक तुम द्वारपर रहो जब हम पुकारें तब उत्तर दो ॥

द्वारपाल । जो आज्ञा ॥

(बाहर गया)

माढव्य । इस स्थान को भला आपने निर्मल कर दिया अब यहां कोई मक्खी भी नहीं रही सुन्दर बृक्षों की छाया में आसन पर बैठिये मैं भी सुख से बिश्राम लूंगा और वह बात सुनूंगा जिस में आपने कहा था कि दौड़ धूप न होगी ॥

दुष्यन्त । पहले तुम्हीं बैठो ॥

माढव्य । आइये (दोनों एक बृक्ष के नीचे बैठे)

दुष्यन्त । हे माढव्य इस संसार में जो पदार्थ देखने योग्य है उस के दर्शन का सुख तेरे नेत्रों को प्राप्त नहीं हुआ ॥

माढव्य । सत्य है काहे से कि इन नेत्रों को नित्य महाराज का दर्शन मिलता है ॥

दुष्यन्त । अपनी बड़ाई तो सभी को भाती है परंतु मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि तेरे नेत्रों ने कभी शकुन्तला को नहीं देखा है जो इस आश्रम की शोभा है ॥

माढव्य । (आपही आप) ऐसी लगन को बढ़ने देना अच्छा नहीं है (प्रगट) जानपड़ा कि मित्र तुम तपस्वी की कन्या को चाहते हो सो भला इस से क्या मिलेगा वह तो ब्राह्मण की बेटी है ॥

दुष्यन्त । हे सखा दूज के चन्द्रमा को संसार मुंह उठाकर और आंख खोल कर किस प्रयोजन से देखता है तू निश्चय मान कि अलीन वस्तु में पुरवंशियों का मन कभी नहीं जाता है शकुन्तला एक राजर्षि की बेटी अप्सरा के पेट से है जानते हो उस की मा उसे पृथ्वी पर डाल स्वर्ग को उड़गयी दैवयोग से कन्व ऋषि वहां आ निकले उन्हों ने ऐसे उठाली जैसे कोई मालती के कुम्हलाते नवीन फूल को आक के पत्ते से उठाले ॥

माढव्य । (हंसकर) जैसे किसी की रुचि छुहारों से हटकर इमली पर लगे तैसेही तुम रनवास की स्त्री रत्नों को छोड़ इस गंवारीपर आशक्त हुए हो ॥

दुष्यन्त । हे सखा जो तू उस को एक बेर देखे तो फिर ऐसी न कहे ॥

माढव्य । सत्य है जिसकी राजा बड़ाई करे वह क्यों उत्तम न होगी ॥

दुष्यन्त । (मुसक्याकर) बहुत कहां तक वर्णन करूं जब मैं ब्रह्मा की शक्ति को सोचता हूं और शकुन्तला के रूप को देखता हूं तो मेरी समझ में इस सरस रत्न की चमक उसकी सब सृष्टि को फीका करती है जितने सरूप के लक्षण हैं बिधाता ने सब उसी मोहनी में इकट्ठे किये हैं ॥

माढव्य । जो ऐसी है तो उस के आगे सब रूपवती स्त्री निरादर हैं ॥

दुष्यन्त । मेरी दृष्टि में तो ऐसी ही है न जानूं यह अनसूंघा फूल यह अछूता पत्ता यह बिन बिधा रत्न यह नया मधु यह अखंड पुण्य का फल यह रूप की राशि बिधाता किस बड़भागी के हाथ लगावेगा ॥

माढव्य । उससे बेगि बिवाह करलो नहीं तो अखंड पुण्य का फल किसी ऐसे अनगढ़ योगी के हाथ लगजायगा जिस का सब शृंगार सिर में हिंगोट का तेल होगा ॥

दुष्यन्त । मित्र वह परवश है और उस का पिता घर नहीं है ॥

माढव्य । भला तुमको वह कैसा चाहती है ॥

दुष्यन्त । सुनों तपस्वियों की कन्या स्वभाव की सकुचीली होती हैं तौ भी जब मैं उसके सन्मुख हुआ उसने आंख चुराकर मेरी ओर देखा और किसी मिस से हंसी भी लाज के मारे वह न तौ प्रीति को प्रगट ही कर सकी न गुप्त ही रख सकी ॥

माढव्य । और क्या देखते ही तुम्हारी गोद में आ बैठती ॥

दुष्यन्त । जिस समय मुझ से बिछुड़ने लगी बड़ी ही सुघड़ाई से अपनी चाह दिखायी थोड़ी सी चली फिर पांव में कांटा लगने का मिस करके बे अवसर खड़ी हो रही फिर कुछ चल कर वृक्ष से अपने वल्कल वस्त्र छुड़ाने के मिस पीछे को निहारी ॥

माढव्य । धन्य है आये तौ मृग के पीछे थे यहां और ही खेल रच दिया मित्र इसी से यह तपोबन तुम को उपबन से अधिक प्यारा लगता है ॥

दुष्यन्त । हे सखा किसी किसी तपस्वी ने मुझे पहचान भी लिया है अब कहो किस मिस से इस आश्रम में चलें ॥

माढव्य । इस से अधिक और क्या मिस राजा को चाहिये कि तपस्वियों से अन्न का अपना छठा भाग मांगो ॥

दुष्यन्त । धिक मूर्ख कुछ और मिस बतला जिस में बड़ाई मिले तपस्वियों की रक्षा के लिये तौ मैं रत्नों के ढेर उठा डालूं तौ भी उचित हो क्योंकि जो और सब वर्णों से राजा को प्राप्त होता है सो सदा नहीं रहता परंतु तपस्या का छठा भाग अक्षय है सो ये ब्राह्मण हमको देते हैं ॥

(नेपथ्य में) अब हमारा मनोरथ सिद्ध हुआ

दुष्यन्त । (कान लगाकर) अहा यह तौ तपस्वियों का सा बोल है ॥

(द्वारपाल आया)

द्वारपाल । स्वामी की जय हो दो ऋषिकुमार द्वारपर आये हैं ॥

दुष्यन्त । तुरंत लाओ ॥

द्वारपाल । अभी लाता हूं (बाहर गया और दो ब्राह्मणों को साथ लेकर आया) इधर आओ इधर आओ ॥

पहला ब्राह्मण । (राजा की ओर देखकर) अहा इस तेजस्वी राजा के दर्शन से मन में कैसा विश्वास उपजता है क्या कारण है जिससे इस के सन्मुख आते ही मेरा सब भय मिटगया मेरे जान यह हेतु होगा कि इस की प्रकृति भी तपस्वियों की सी है हमारी भांति इसने भी बन का निवास लिया है और हमारी रक्षा करना यही अपने लिये दिन प्रतिदिन तप संचय करना ठहराया है जितेन्द्री राजा का यश स्वर्ग तक पहुंचता है और वहां उस को गन्धर्व अप्सरा राजर्षि कहकर गाते हैं ॥

दूसरा ब्राह्मण । हे गौतम क्या यही इन्द्र का सखा दुष्यन्त है ॥

प० ब्राह्मण । हां यही है ॥

दू० ब्राह्मण । तौ फिर क्या आश्चर्य है कि यह अकेला अपनी बाहों से जो नगर के राजद्वार की अर्गला के तुल्य हैं समुद्र पर्य्यन्त सब पृथ्वी पर राज करता है और स्वर्ग में देवता इन्द्र के वज्र को भूल इसी के धनुष के प्रताप से दैत्यों पर अपना विजय पाना बखानते हैं ॥

दो० ब्राह्मण । (राजा के निकट जाकर) महाराज की जय हो ॥

दुष्यन्त । (प्रणाम करके) तुम्हारे आगमन का कारण जानने की हमारी इच्छा है ॥

दो० ब्राह्मण । महाराज आश्रमवासियों ने यह जानकर कि आप यहीं हो कुछ प्रार्थना की है ॥

दुष्यन्त । क्या आज्ञा की है ॥

दो० ब्राह्मण । हमारे गुरु कन्व ऋषि यहां नहीं हैं और राक्षस आकर यज्ञ में विघ्न डालते हैं इसलिये आप सारथी समेत कुछ दिन इस आश्रम की रक्षा करो ॥

दुष्यन्त । (मुसक्याकर) यह तौ मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया ॥

माढव्य । (सैन देकर) अबतौ तुम्हारी मनोकामना पूरी हुई ॥

दुष्यन्त । (मुसक्याकर) रैवतक तू जाकर सारथी को आज्ञा दे कि रथ लावे और मेरा धनुषबान भी लेता आवे ॥

द्वारपाल । जो आज्ञा (बाहर गया)

दो० ब्राह्मण। (हर्ष से) आप अगलों की रीतिपर चलते हो इससे यही उचित है और यह तो प्रसिद्ध ही है कि शरणागत को अभय देने के निमित्त पुरुवंशी सदा रणकंकण बांधे रहते हैं॥

दुष्यन्त। (प्रणाम करके) ब्राह्मणों तुम आगे चलो मैं भी आया॥

दो० ब्राह्मण। सदा जय रहे (दोनों गये)

दुष्यन्त। माढव्य क्या तेरी इच्छा शकुन्तला के देखने की है॥

माढव्य। पहले तो कुछ भी चिन्ता न थी परंतु जब से राक्षसों का नाम सुना है तब से उधर जाने को जी डरता है॥

दुष्यन्त। डरता क्यों है हमारे पास रहना॥

माढव्य। मुझे राक्षस से बचाने का आप को अवकाश भी मिलेगा॥

(द्वारपाल आया)

द्वारपाल। महाराज रथ आगया है और आप की माता की आज्ञा पाकर करभक दूत भी नगर से आया है॥

दुष्यन्त। (सत्कार करके) क्या माता का भेजा करभक आया है अच्छा उस को आने दो॥

द्वारपाल। जो आज्ञा (बाहर गया और करभक दूत को लिवा लाया) महाराज इधर हैं सन्मुख जा॥

करभक। (साष्टांग होकर) स्वामी की जय हो माता ने यह आज्ञा की है कि आप की आर्वल बढ़ाने के निमित्त आज से चौथे दिन आप की बरसगांठ का उत्सव होगा उस समय आप का आना भी अवश्य है॥

दुष्यन्त। इधर तो तपस्वियों का काम उधर बड़ों की आज्ञा इन में से कोई उल्लंघन योग्य नहीं है इस का क्या उपाय करूं॥

माढव्य। (हंसकर) अब तो तुम त्रिशंकु बन कर यहीं ठैरो॥

दुष्यन्त। इस समय मेरे चित्त को सच्चा असमंजस है क्योंकि दोनों कार्य दूर दूर पर हैं (सोचता हुआ) हे सखा तुझसे भी तो माता पुत्र कहकर बोली है इस से तूही नगर को जा और कहदे कि हम को तपस्वियों का कार्य करना अवश्य है॥

माढव्य । यह तो सब करूंगा परंतु तुम कहीं ऐसा तो नहीं समझे हो कि मैं राक्षसों से डर गया हूं ॥

दुष्यन्त । (मुसक्याकर) नहीं तू बड़ा बीर है तू क्यों डरेगा ॥

माढव्य । अब मैं राजा का छोटा भाई हूं या नहीं ॥

दुष्यन्त । हां ठीक है इसी लिये तेरे साथ को भीड़ भाड़ भी चाहिये इन सब को अपने साथ लेजा क्योंकि तपोबन में इतना ठौर भी नहीं है ॥

माढव्य । तो तो मैं राजा ही हो गया ॥

दुष्यन्त । (आप ही आप) यह ब्राह्मण बड़ा चपल है कहीं हमारी लगन का वृत्तान्त रनवास में न कहदे अब इस को कुछ धोखा देना चाहिये (माढव्य का हाथ पकड़कर) हे मित्र मैं केवल ऋषियों का बड़प्पन रखने को इस तपोबन में जाऊंगा यह तू निश्चय जान कि तपस्वी की कन्या शकुन्तला के कारण नहीं जाता हूं देख जो कन्या हरिणियों के साथ रही है और शृंगार रस के मरम नहीं जानती है उससे क्योंकर मेरा मन लगेगा उसका वृत्तान्त जो मैंने तुझसे कहा था केवल मन बहलाने की बात थी ॥

माढव्य । सत्य है आप की जय रहे ॥

दुष्यन्त । अच्छा हमारा संदेसा यथार्थ भुगता दीजो मैं तपस्वियों की रक्षा को जाता हूं ॥

(सब बाहर गये)

अंक ३

स्थानबन में तपस्वियों का आश्रम

(कन्व का एक चेला आया)

चेला । (कुश हाथ में लिये अचम्भासा करता हुआ) अहा दुष्यन्त का कैसा आतंक है कि जिस के चरन बन में आते ही हमारे सब यज्ञ कर्म निर्विघ्न होने लगे बान चढ़ाने की तो क्या चली प्रत्यंचा की फटकार

और धनुष की टंकार ही से हमारे सब कलेश मिटा दिये अब चलूं मुझे ये दाभ वेदीपर बिछाने के लिये यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणों को देने हैं (फिरकर और नेपथ्य के पीछे देखकर) हे प्रियम्बदा किस के लिये उसीर का लेप और कमल के पत्ते लिये जाती है (कान लगाकर सुनता हुआ) क्या कहा कि धूप लगने से शकुन्तला बहुत व्याकुल होगयी है उस के लिये ठंढाई लिये जाती हूं अच्छा तो दौड़ी जा वह कन्या कन्व की प्राण है मैं भी गौतमी के हाथ यज्ञमंच का पढ़ा जल भेजूंगा (बाहर गया)

(आसक्त मनुष्यों की सी दशा बनाये दुष्यन्त आया)

दुष्यन्त । तपस्या का प्रभाव मैं भली भांति जानता हूं और यह भी समझता हूं कि वह पराये बस है परंतु अपने चित्त को उस से हटाने की सामर्थ्य नहीं रखता हूं (फिरकर और देखकर) हाय जब यज्ञ समाप्त होगा तब ऋषियों से बिदा होकर मैं कहां अपने दुखी जीव को बहलाऊंगा (ठंढी स्वास लेकर) प्रिया के दर्शन बिना कोई मुझे धीरज देनेवाला नहीं है अब उसी को ढूंढूं (ऊपर देखकर) इस घाम को प्यारी कहीं मालिनी के तटपर लताकुंजों में सखियों के साथ बिताती होगी अब वहीं चलूं (फिरकर और देखकर) मेरी जीवनमूल यहीं होकर गयी है क्योंकि जिन डालियों से फूल तोड़े हैं उनका दूध भी अभी नहीं सूखा है (पवन का लगना प्रगट करके) यहां पवन कमलों की सुगंधि लिये और मालिनी की शीतल तरंगों को छूये देही देह को स्पर्श करने आती है (फिरकर) कहीं इन्हीं वेतों के लतामंडल में प्यारी होगी इन बृक्षों में तो देखूं (फिरकर और चित्त लगाकर देखकर) अब मेरे नेत्र सफल हुए मनभावती उस पटिया पर फूल बिछाये पौढ़ी है और सखी सेवा में खड़ी हैं अब चाहो सो हो इन के मते की बातें सुनूंगा (खड़ा होकर गहरी दृष्टि से देखता हुआ)

(दोनों सखियों समेत शकुन्तला दिखायी दी)

दो० सखी । (पंखा झलती हुई) हे सखी शकुन्तला हम कमल के पत्तों से ब्यार करती हैं सो तेरे शरीर को लगती है या नहीं ॥

शकुन्तला । (अकुलाकर) सखियो तुम क्यों मेरे लिये दुख सहती हो (दोनों सखी एक दूसरी की ओर देखती हुई)

दुष्यन्त । (आप ही आप) हैं इसकी तो यह दशा हो रही है क्या कारन इस ज्वर का है धूप लगी है या जैसा मैं समझा हूं (सोच में डूबा हुआ) इस समय मेरे मन में कैसे कैसे संदेह उठते हैं प्यारी के हृदय में उसीर का लेप लगा है और हाथों में कमल नाल का कंकन इतना ढीला हो गया है परंतु इस दुर्बलता पर भी शरीर कैसा रमणीय है ग्रीष्म ऋतु के भानु का संताप तरुण स्त्रियों को इतना नहीं सताता है ॥

प्रियम्बदा । (हौले अनसूया से) हे अनसूया तैंने भी देखा था या नहीं कि जब शकुन्तला की दृष्टि उस राजर्षि पर पड़ी तब कैसी ठगी सी हो गयी थी कहीं वही रोग तो इसे नहीं है ॥

अनसूया । (हौले प्रियम्बदा से) मेरे मन में भी यही भ्यासती है चाहे सो हो इससे पूछना चाहिये (प्रगट) हे सखी शकुन्तला मैं यह पूछती हूं तेरी यह दशा क्योंकर हुई है ॥

शकुन्तला । (फूलों की सेज से थोड़ीसी उठकर) सहेलियो तुम्ही बताओ तुम इसका कारन क्या समझी हो ॥

अनसूया । सखी हम तेरे हृदय की तो क्या जानें परंतु जैसी दशा लगन लगे मनुष्यों की कहानियों में सुनी है वैसी तेरी दिखायी देती है तू ही कह दे तुझे क्या रोग है क्योंकि जब तक मरम न जाने बैद्य औषधि भी नहीं कर सकता है ॥

दुष्यन्त । (हौले आप ही आप) मेरे मन में भी यही थी ॥

शकुन्तला । (हौले आप ही आप) मेरी बिथा तो भारी है परंतु इस का कारन तुरंत ही न कह दूंगी ॥

प्रियम्बदा । हे शकुन्तला यह अनसूया भली कहती है तू अपने रोग को बढ़ने मत दे क्योंकि दिनपर दिन तू दुबली होती जाती है अब केवल स्वरूप ही रह गया है ॥

दुष्यन्त । (हौले आपही आप) प्रियम्बदा ने सत्य कहा इसके कपोल सूख गये हैं अंग शिथिल हो गये हैं कटि अति छीन पड़ गयी है

कंधे झुक आये हैं रंग पीला पड़ गया है ऐसी हो गयी है जैसी लपट की मारी चमेली की लता परंतु मेरे मन को अब भी सजीवनी है ॥

शकुन्तला । (आह करके) सखी तुम से न कहूंगी किससे कहूंगी तुम्ही को दुख दूंगी ॥

प्रियम्बदा । प्यारी इसी से तो हम हठ करके पूछती हैं कि हितू जनों के बताने से दुख घटता है ॥

दुष्यन्त । (होले आप ही आप) अब सुख दुख की साझिन सखियों के पूछने से यह अपने मन की सब बात कह देगी इसकी आंखों का ठगा मैं हूं सो मेरी भी यही चाह है कि अब इसके मुख से उत्तर सुनूं ॥

शकुन्तला । हे सखी जब से मेरे नेत्रों के सामने इस तपोबन का रखवाला चतुर राजर्षि आया तभी से (इतना कह लज्जित होकर चुप रह गयी)

दो० सखी । कहेजा ॥

शकुन्तला । तब से मेरा मन उसके बस होकर इस दशा को पहुंचा है ॥

अनसूया । चलो यह भी अच्छा हुआ कि जो तेरे योग्य था उसी से आंख लगी ॥

प्रियम्बदा । यह कब हो सक्ता है कि निर्मल नदी समुद्र को छोड़ ताल में गिरे अथवा सुन्दर लता आम को छोड़ दूसरे बृक्ष से लिपटे ॥

दुष्यन्त । (हर्ष से आप ही आप) जो मैं सुना चाहता था सोई प्रिया के मुख से सुनलिया मेरी बिथा का कारण प्रेम था उसी ने उस बिथा को दूर किया जैसे सूर्य्य का तेज ग्रीष्म में पहले जीव जन्तु को तपाता है फिर मेह बरसा कर सुखकारी होता है ॥

शकुन्तला । जो कुछ दोष न समझो तो ऐसा उपाय करो जिस से वह राजर्षि फिर मिले और जो तुम ऐसा न करना चाहो तो मुझे तिलाञ्जली दो ॥

दुष्यन्त । (आप ही आप) इस बचन से मेरा सब संशय मिटगया ॥

प्रियम्बदा । (होले अनसूया से) हे सखी इस रोग की औषधि मिलनी दुर्लभ दिखायी देती है और रोग ऐसा कठिन है कि इस में विलंब होना न चाहिये इस से जहां तक बुद्धि चल सके उपाय करो लगन तो इसकी बड़ाई के योग्य है क्योंकि वह भी पुरुवंश भूषण है ॥

अनसूया । (हौले) सत्य है परंतु कौनसा यत्न है जिससे यह रोग तुरन्त मिटै और उपाय प्रगट भी न हो ॥

प्रियम्बदा । (हौले अनसूया से) उपाय का गुप्त रखना तो कुछ कठिन नहीं है परंतु तुरन्त मिलना बहुत दुर्लभ है ॥

दुष्यन्त । (आप ही आप) चन्द्रमा बिशाखा नक्षत्र में आजाय तो क्या आश्चर्य है ॥

अनसूया । (हौले प्रियम्बदा से) क्यों ॥

प्रियम्वदा । (हौले अनसूया से) जिस समय प्रथम ही उस राजर्षि ने इस को स्नेह की दृष्टि से देखा मैं जान गयी थी कि उसका भी मन इस पर आसक्त हुआ अब सुन्ती हूं कि वह भी ऐसा दुर्बल और पीला पड़ गया है मानों इसके अनुराग में उसे रात रातभर जागते बीतता है ॥

दुष्यन्त । (आप ही आप) हो तो ऐसा ही गया हूं सारी सारी रात संताप के आंसुओं से भीगकर इस भुजबंद के रत्न फीके पड़ गये हैं और यह इतना ढीला हो गया है कि सरक कर बार बार पहुंचे पर गिरता है॥

प्रियम्बदा । (प्रगट) हे सखी अनसूया मेरे बिचार में यह आता है कि एक प्रीतिपत्र लिखूं और फूलों में छुपाकर प्रसाद के मिससे राजा को दूं ॥

अनसूया । सखी यह उपाय बहुत उत्तम है परंतु शकुन्तला से भी पूछलो वह क्या कहती है ॥

शकुन्तला । इस उपाय का परिणाम मुझे सोच लेने दो ॥

प्रियम्बदा । जैसी तेरी दशा हो रही है वैसा ही कोई छन्द भी बना दे॥

शकुन्तला । सखी मैं छन्द तो रचूंगी परंतु डरती हूं कि कहीं वह राजा अपमान करके फेर न दे ॥

दुष्यन्त । (आप ही आप) जिसके अपमान से तू डरती है सो हे प्रान-प्यारी यह तेरे मिलने को तरस्ता है जो कोई लक्ष्मी मिलने की चाह करे उसे चाहे लक्ष्मी न भी मिले परंतु जिस को लक्ष्मी चाहे वह क्योंकर न मिले हे सुन्दरी जिससे आदर मिलने में तुझे सन्देह है सोई यह प्रीति लगाये तेरे सन्मुख खड़ा है रत्न किसी को ढूंढ़ने नहीं जाता है रत्न ही को सब ढूंढ़ते हैं ॥

अनसूया । सखी तू अपने गुणों को घटाकर कहती है नहीं तो ऐसा मूर्ख कौन होगा जो सूर्य्य का ताप मिटानेवाली सीतल सरद चांदनी को रोकने के लिये अपने शिर पर कपड़ा ताने ॥

शकुन्तला । मैं उसी बात के सोच बिचार में हूं जो तुमने कही है॥

(सोचने लगी)

दुष्यन्त । (आप ही आप) प्यारी को लोचन भर देखने का यह अवसर अच्छा है इस समय छन्द बनाने में इस की चढ़ी भौंह कैसी शोभायमान है और पुलकित कपोलों से प्रीति कैसी स्पष्ट दरसाती है ॥

शकुन्तला । सखी छन्द तो मैंने बना लिया परंतु लिखने की सामग्री नहीं है ॥

प्रियम्बदा । तू पढ़तीजा मैं इस कोमल कमल के पत्ते पर अपने नखों से लिखलूंगी ॥

शकुन्तला । सखियो सुनो इस छन्द में अर्थ बना या नहीं ॥

दो० सखी । बांच ॥

शकुन्तला । (बांचती हुई)

दोहा ।

तो मनकी जानति नहीं अहो मीत सुखदैन ।
पै मो मन को करत है प्रान महा बेचैन ॥

सोरठा ।

लाग्यो तोसों नेह रैन दिना कल ना परै ।
प्रेम तपावत देह तन मन अपनो देचुकी ॥

दुष्यन्त । (झटपट आगे बढ़कर उसी छन्द में पढ़ता हुआ)

दोहा ।

केवल तोहि तपावही प्रेम अहो सुकुमारि ।
भस्म करत पै मोहि यो तू चित देख बिचारि ॥

सोरठा ।

भानु मंद करदेत केवल गंधिक मोदिनिहि ।
पै शशिमंडल स्वेत होत प्रात के दरसतें ॥

दो० सखी । (हर्ष से) तुम भले आये हमारी सखी का मनोरथ पूरा हुआ (शकुन्तला आदर देने को उठने की इच्छा करती हुई)

दुष्यन्त । रहो रहो मेरे लिये क्यों परिश्रम करती हो तुम्हारा यह ताप का सताया कोमल शरीर जो सेज के फूलों को कुम्हलाता है और ये भुजा जिन में कमल के मुरझाए कंकनों की सुगन्धि आती है इतना कष्ट सहने योग्य नहीं हैं ॥

शकुन्तला । (आप ही आप) अरे मन तू अब तो धीरज धर ॥

अनसूया । महाराज आप भी उसी चटान पै बिराजिये जहां शकुन्तला है (शकुन्तला ने जगह दी)

दुष्यन्त । (बैठकर) कहो तुम्हारी सखी के शरीर का कुछ ताप घटा ॥

दो० सखी । (हंसकर) अभी औषधि मिली है अब घटेगा (शकुन्तला लज्जित हो गई)

दुष्यन्त । (आप ही आप) यह केवल अपने रूप ही के बल से मन को बस नहीं करती है इसका लज्जित होना भी चित्त को ठगे लेता है देखो अपनी आंखों के ताड़ित किये कमल की पखुरियों को कैसे अनोखेपन से गिन रही है ॥

शकुन्तला । प्रियम्बदा मेरे निकट आ ॥

प्रियम्बदा । (पास जाकर) आयी ॥

शकुन्तला । राजा से यों कहो (कान में कुछ कहती हुई)

प्रियम्बदा । हे बड़भागी तुम से शकुन्तला बिनती करती है कि प्रथम मिलाप को भूल मत जाना ॥ (शकुन्तला से) महाराज भी यही कहते हैं ॥

शकुन्तला । महाराज जैसे रूपवान हैं वैसे ही चतुर भी हैं ॥

प्रियम्बदा । हे सज्जन यद्यपि तुम्हारी दोनों की परस्पर प्रीति प्रगट है परंतु इस सखी का स्नेह मुझ से फिर कुछ कहलाया चाहता है ॥

दुष्यन्त । सुन्दरी जो कुछ कहा चाहती हो निधड़क कहो छुपाओ मत क्योंकि कहने को मन में आवे और कहा न जाय तो चित्त को खेद करता है ॥

प्रियम्बदा । प्रजा को दुख हो तो राजा का धर्म है कि उस दुख को मिटावे ॥

दुष्यन्त । सत्य है इस से बड़ा कोई धर्म राजा के लिये नहीं है ॥

प्रियम्बदा । हमारी सखी को तुम्हारी लगन ने इस दशा को पहुंचा दिया है अब तुम्ही इस योग्य हो कि इस को जीवदान दो ॥

दुष्यन्त । हे सुन्दरी प्रीति तो हमारी परस्पर है परंतु इस में सब विधि कृतार्थ मैं हीं हूं ॥

शकुन्तला । (मुसक्या कर) राजा को क्यों यहां बिलमाती हो उन का मन रनवास में धरा होगा ॥

दुष्यन्त । मेरे मन को हे मृगनैनी तुझ से अधिक कोई प्यारा नहीं अब तू ऐसे बचन कहकर क्यों मेरे हृदय को घायल करती है ॥

अनसूया । (हंसकर) हे सज्जन हम यह सुनते हैं कि राजा बहुत रानियों के प्यारे होते हैं तुम हमारी सखी का ऐसा निरबाह करना जिस से हम को कलेस न पहुंचे ॥

दुष्यन्त । हे सुन्दरी अधिक क्या कहूं मेरे रनवास में चाहे जितनी रानी हों मुझे दो ही वस्तु संसार में प्यारी होंगी एक पृथ्वी दूसरी तुम्हारी सखी॥

दोनों सखी । तो अब हमारी चिन्ता मिटी ॥

प्रियम्बदा । (सैन दे कर होले अनसूया से) देख अब शकुन्तला का जी कैसा हरा होता है जैसे लपट की सतायी मोरनी बरषा के बादल आने और शीतल पवन लगने से चैतन्य हो जाती है ॥

शकुन्तला । (दोनों सखियों से) मैंने तुम से बड़े कठोर बचन कहे हैं सो यह अपराध क्षमा करना ॥

प्रियम्बदा । हमने सीख ही ऐसी दी थी जिससे कड़े बचन सुन्ने पड़ें परंतु राजा से क्षमा मांगो उन्हीं का अपमान हुआ होगा ॥

शकुन्तला । महाराज मैं बिनती करती हूं कि जो कुछ कहनी न कहनी बात मेरे मुख से आप के सन्मुख अथवा पीछे निकली हो यह अपराध क्षमा किया जाय (होले सखियों से) सखियो तुम भी मेरे लिये कुछ कहो ॥

दुष्यन्त । हे पद्मिनी क्षमा मैं तब करूंगा जब तू फूलों की आधी सेज पर मुझे भी निज जन जान आसन देगी ॥

दो०सखी । हां हां सच्ची तो है थोड़ी सी जगह राजा को भी दे इनका मन संतुष्ट हो ॥

शकुन्तला । (रिससी होकर प्रियम्बदा से) चुप रहो चंचल तुम मुझ से इस दशा में भी हंसी करती हो ॥

प्रियम्बदा । (अनसूया की ओर देखकर) हे अनसूया हरिण का बच्चा अपनी मा को ढूंढ़ता फिरता है चलो उसे मिलादें (दोनों चलीं)

शकुन्तला । सखियो में अकेली रही जाती हूं तुम में से एक तो. मेरे पास रहो यहां कोई नहीं है ॥

दुष्यन्त । हे कामिनी गुरु जनों का कुछ भय मतकर काहे से कि कन्व धर्म को जानते हैं तुझे दोष न देंगे बहुतेरी ऋषिकन्या गंधर्व रीति से व्याही गयी हैं उनके मा बाप ने कुछ दोष नहीं लगाया ॥
(नेपथ्य में) हे चकई अब चकवे से न्यारी हो रात आयी ॥

शकुन्तला । (कान लगाकर और सटपटा कर) हे महाराजकुमार निश्चय मेरे शरीर का वृत्तान्त पूछने को कन्व की छोटी बहन गोतमी आती है तुम वृक्ष की आड़ में हो जाओ ॥

दुष्यन्त । अच्छा यही करूंगा (चला गया)

(हाथ में कमंडल लिये गोतमी आयी)

गोतमी । (शकुन्तला की ओर अति चिन्ता से देखकर) पुत्री तेरे लिये मंत्र पढ़ा जल लाई हूं क्या तू यहां अकेली ही है सहेली कहां गयीं ॥

शकुन्तला । प्रियम्बदा और अनसूया दोनों अभी नदी को गयी हैं ॥

गोतमी । (जल के छींटे देकर) शकुन्तला तेरे शरीर का ताप कुछ घटा कि नहीं (नाड़ी देखी)

शकुन्तला । हां कुछ घटा है ॥

गोतमी । इस कुस के जल से तेरा शरीर निरोग हो जायगा कुछ भय मतकर परंतु अब संध्या हुई घर को चल ॥

शकुन्तला । (होले से उठकर आपही आप) हे मन तेरी आकांक्षा पूरी हो गयी तो भी चिन्ता न मिटी इस का क्या उपाय होगा (थोड़ी दूर चल कर खड़ी हुई) हे संताप हरने वाली लताओ मैं तुम से बिनती करती हूं कि कभी फिर भी सुख दिखाना (गोतमी के साथ चलती हुई)

दुष्यन्त। (उसी स्थान पर आकर और गहरी सांस भर कर) सत्य है जिस बात का मनोरथ किया जाय उस में विघ्न अवश्य होता है (चारों ओर देखकर) हाय चटान पर यही फूलों की सेज है जिस पर वह पौढ़ी थी यही कमल का पत्ता है जिस पर प्यारी ने स्नेहपत्र लिखा था यह उसकी बांह से गिरा कमलों का कंकन है यद्यपि यह बेतलता सूनी है तौ भी इन चिन्हों को देख देख मुझ से छोड़ी नहीं जाती मुझे धिक्कार है कि प्यारी से मिलकर फिर उसके बियोग में समय व्यतीत करता हूं जो एक बेर फिर इस लताभवन में वह मनभावती आवे तौ कभी बिछुरने न दूं सुख की घड़ी बड़े श्रम से मिलती है मेरा यह मूर्ख मन अब तौ ऐसा प्रण करता है परंतु प्यारी के सन्मुख कायर हो जाता है॥

(नेपथ्य में) हे राजा अब हमारा सन्ध्या के यज्ञकर्म का समय हुआ और मांसाहारी राक्षसों की छाया हुताशन की बेदी पर सांझ के मेघ के बरन फिरती दिखायी देती है इससे भय उपजा है॥

दुष्यन्त। हे तपस्वियो भयभीत मत हो मैं आया॥

(बाहर गया)

अंक ४

स्थान तपोबन

(दोनों सखी फूल बीनती आयीं)

अनसूया। हे सखी प्रियम्बदा हमारी सहेली शकुन्तला का गान्धर्व विवाह हुआ और पति भी उसी के समान मिला इससे हमारे मन को सुख हुआ परंतु फिर भी चिन्ता न मिटी॥

प्रियम्बदा। सखी और क्या चिन्ता रह गयी॥

अनसूया। आज वह राजर्षि तपस्वियों का यज्ञ पूरा कराकर अपनी राजधानी हस्तिनापुर को बिदा हुआ है वहां रनवास में पहुंचकर जाने यहां की सुध रहेगी या न रहेगी॥

प्रियम्वदा । इस की कुछ चिन्ता मत करो ऐसे गुनवान मनुष्य कभी निर्लज्ज नहीं होते हैं अब चिन्ता की बात यह है कि न जानें पिता कन्व इस वृत्तांत को सुनकर क्या कहेंगे ॥

अनसूया । मेरे मन में तो यह भ्यासती है कि वे इस वृत्तांत से प्रसन्न होंगे ॥

प्रियम्बदा । क्यों ॥

अनसूया । इसलिये कि उनका संकल्प था कि यह कन्या किसी गुन-वान को दें सो दैव ने वैसा ही योग मिला दिया फिर वे क्यों अप्र-सन्न होंगे ॥

प्रियम्बदा । सत्य है (फूलों की टोकरी को देखकर) हे सखी जितने फूल पूजा के लिये चाहियें उतने तो बीन चुकीं ॥

अनसूया । अब थोड़े से शकुन्तला से गौरिपूजा कराने के लिये और बीन लें ॥

प्रियम्बदा । अच्छा (दोनों फूल बीनने लगीं)

(नेपथ्य में) मैं आता हूं

अनसूया । (कान लगाकर) हे सखी ऐसा बोल जान पड़ता है मानों कोई अतिथि आश्रम में आया है ॥

प्रियम्बदा । क्या डर है शकुन्तला वहां बनी है ॥

अनसूया । शकुन्तला है तो परंतु उसका मन ठिकाने नहीं है चलो इतने ही फूल बहुत हैं (चलदीं)

(नेपथ्य में) हे अतिथि का निरादर करने वाली मैं तुझे श्राप देता हूं कि जो जिस पुरुष के ध्यान में तू ऐसी मग्न बैठी है कि तैने मुझ तपस्वी को भी आया न जाना वही तेरा निरादर करेगा और फिर तू उसके सन्मुख होकर अपनी सुधि दिलावेगी तो भी वह तुझे ऐसा भूल जायगा जैसा कोई उन्मत्त मनुष्य चैतन्य होकर उन्मत्तता की कही बातों को भूल जाता है ॥

प्रियम्बदा । हाय हाय बुरी हुई किसी तपस्वी का अपराध बेसुधि में शकुन्तला से बना ॥

अनसूया। (आगे देखकर) ठीक है तभी रिस भरे दुर्वासा बेग बेग लौटे जाते हैं॥

प्रियम्वदा। इन को छोड़ और किसी को ऐसो सामर्थ्य नहीं है कि अपराधी को श्राप से भस्म करदे हे अनसूया तू पैरों पड़कर जैसे बने तैसे इन को मनाला तब तक मैं उन के लिये अर्घ संजोती हूं॥

अनसूया। मैं जाती हूं॥

प्रियम्वदा। (दौड़कर चली इससे पांव रपट गया) हाय उतावली होकर मैंने फूलों की टोकरी गिरायी अब कहीं ऐसा न हो कि पूजा उल्लंघन हो जाय (फूल बीन्ने लगी)

(अनसूया फिर आयी)

अनसूया। हे सखी इनका स्वभाव बहुत टेढ़ा है और क्रोध इतना है कि किसी भांति मनाये नहीं मानते हैं परंतु तो भी मैंने कुछ सीधे कर लिये॥

प्रियम्वदा। इनका थोड़ा सीधा होना भी बहुत है तुम यह कहो कि कैसे मने॥

अनसूया। जब किसी भांति न माने तब मैंने पैरों में गिरकर यह बिन्ती की कि हे महा पुरुष तुम को इसने आगे नहीं देखा था इससे तुम्हारे प्रभाव को नहीं जानती थी अब इस कन्या का अपराध क्षमा करो॥

प्रियम्वदा। तब क्या कहा॥

अनसूया। तब बोले कि मेरा श्राप झूठा नहीं होता है परंतु जब इस का पति अपनी मुंदरी को देखेगा तब श्राप मिट जायगा यह कहकर अन्तरध्यान होगये॥

प्रियम्वदा। तो कुछ आशा है क्योंकि जब वह राजर्षि चलने को हुआ था तब अपनी अंगूठी जिस में उसका नाम खुदा था शकुन्तला की उंगली में पहना दी थी और उस को तुरन्त पहचान भी लेगा यही शकुन्तला के लिये अच्छा उपाय है॥

अनसूया। आओ अब चलें देवियों से प्रार्थना करें॥

प्रियम्बदा। हे अनसूया देख बांये कर पर कपोल धरे पति के वियोग में प्यारी सखी कैसी चित्रसी बन रही है दूसरे की तो क्या चलायी इसे अपनी भी सुध नहीं है॥

अनसूया। हे प्रियम्बदा यह आप की बात हम हीं तुम जानें शकुन्तला को मत सुनाओ क्योंकि उसका स्वभाव कोमल बहुत है॥

प्रियम्बदा। ऐसा कौन होगा जो मल्लिका की लहलही लता पर तत्ता पानी छिड़के (दोनों गयीं)

(कन्व का एक चेला आया)

चेला। महात्मा कन्व ऋषि प्रभासतीर्थ से आ गये हैं और मुझे आज्ञा दी है कि देख आ राति कितनी रही है सो मैं रात को बाहर आया हूं (इधर उधर फिरकर आकाश की ओर देखता हुआ) अहा यह तो प्रभात हो गया चन्द्रमा और सूर्य्य इस संसार की सम्पत्ति विपत्ति की अनित्यता का कैसा अनुमान कराते हैं औषधिपति तो इस समय अस्त होने पर है और ग्रहपति अरुण को सारथी किये उदय हुआ चाहता है इन की शोभा उदय अस्त पर बढ़ घट होती है ऐसे ही सज्जन मनुष्य सुख दुख में धीरज रखते हैं इनकी घटती बढ़ती इस संसार के उतार चढ़ाव का दृष्टान्त है वही कमोदिनी जिसकी शोभा की बड़ाई होती थी अब चन्द्रास्त में दृष्टि को आनन्द नहीं देती केवल सुगंधि रह गयी है और ऐसी कुम्हला गयी है जैसे अपने प्यारे के बियोग में अबलाजन व्यथित होती हैं देखो बेर के पत्तों पर ओस की बूंदों को अरुण कैसी शोभा देता है दाभ की कुटी से मोर निद्रा छोड़ छोड़ बाहर निकलते हैं यज्ञस्थानों से भाग भाग कर मृग टीले पर खड़े कैसे ऐंड़ाते हैं वही चन्द्रमा जो गिरिराज सुमेरु के सिर पर पांव धरता और अन्धकार को मिटाता हुआ मध्य आकाश में बिष्णुधाम तक चढ़ गया था अपना तेज गवांकर नीचे को जाता है ऐसे ही इस संसार में बड़े मनुष्य अति श्रम से अपनी कामना को प्राप्त होते हैं फिर तुरन्त उतरना पड़ता है॥

(अनसूया कुछ बिचारती हुई आयी)

अनसूया । (आप ही आप) यद्यपि शकुन्तला तपोबन में इतनी बड़ी हुई है और इंद्रियों का सुख नहीं जाना है तो भी लगन ने यह दशा उसकी करदी है हाय राजा ने कैसी अनीति इसके साथ की है ॥

चेला । (आप ही आप) अब होम का समय हुआ गुरु से चल कर कहना चाहिये (बाहर गया) ॥

अनसूया । रैन बीत गयी मैं अभी सोते से भी नहीं उठी हूं और जो उठी भी होती तो क्या करती हाथ पैर तो कहने ही में नहीं हैं अब निर्दयी बिधाता का मनोरथ पूरा हुआ कि उसने एक मिथ्याबादी राजा के बस में हमारी सीधी सच्ची सखी को डालकर इस दशा को पहुंचाया है और जो यह फल दुर्बासा के शाप का नहीं है तो क्या हेतु है कि धर्मात्मा राजा ने ऐसे बचन देकर अब तक संदेसा भी न भेजा अब यह उचित है या नहीं कि उस सुन्दरी को हम राजा के पास भेजें अथवा और भी कोई उपाय है जिससे हमारी प्यारी सखी का बिरह मिटै उसका तो कुछ अपराध नहीं है पिता कन्व तीर्थ करके आगये परंतु उन से यह बात कहने को कि शकुन्तला का विवाह राजा दुष्यन्त से हो गया है और गर्भवती भी है मेरा हियाव नहीं पड़ता है हे दैव अब क्या उपाय करें जिस से शकुन्तला की बिथा दूर हो ॥

(प्रियम्बदा आयी)

प्रियम्बदा । अनसूया चलो शकुन्तला की बिदा का उपचार करें ॥

अनसूया । (आश्चर्य्य से) सखी तू क्या कहती है ॥

प्रियम्बदा । अभी मैं शकुन्तला से यह बात पूछने गयी थी कि रात को चैन से सोयी या नहीं ॥

अनसूया । सो तब ॥

प्रियम्बदा । सो वह तो सिर झुकाये बैठी थी इतने में पिता कन्व निकट आकर उस से मिले और यह शुभ बचन बोले कि हे पुत्री बड़े मंगल की बात है कि आज प्रातःकाल जब ब्राह्मण ने अग्निकुंड में आहुति दी तब यद्यपि यज्ञ के धुएं से उसकी दृष्टि धुंधुली होरही थी

तौभी आहुति अग्नि के बीच में पड़ी इसलिये अब तुम को मैं अधिक दुःख में न रक्खूंगा आज तुम्हारी बिदा इस कुटी से उस राजा के रनवास को करदूंगा जिसने तुम्हारा पाणिग्रहण किया है ॥

अनसूया । हे सखी जो बातें मुनि के पीछे हुई थीं सो उन से कहदीं ॥

प्रियम्बदा । जब मुनि यज्ञस्थान के निकट पहुंचे तब आकाशवाणी कहगयी ॥

अनसूया । (चकित होकर) तू कैसी अचंभे की बात कहती है ॥

प्रियम्बदा । सखी सुन आकाशवाणी ने यह कहा कि हे ब्राह्मण जैसे होम की अग्नि से शमी गर्भवती होती है तैसे ही तेरी बेटी ने पृथ्वी की रक्षा के निमित्त राजा दुष्यन्त से एक अंश तेज का लिया है ॥

अनसूया । (आनन्द से प्रियम्बदा को भेटकर) हे सखी यह सुनकर मुझे बड़ा सुख हुआ परंतु सखी के बिछोह का दुख भी है इसलिये आज हमारा हर्ष शोक समान है ॥

प्रियम्बदा । सखी को सुख होगा इस से हम को भी कुछ शोक न करना चाहिये ॥

अनसूया । मैंने इसी दिन के लिये उस नारियल में जो वह देखो आम के वृक्ष पर लटकता है नागकेसर भर रक्खी थी तुम उसे उतारकर कमल के पत्ते में रक्खो तब तक मैं थोड़ासा गोरोचन और मिट्टी और दूब मंगलकार्य्य के लिये लेआऊं ॥

प्रियम्बदा । बहुत अच्छा (प्रियम्बदा ने नागकेसर ली और अनसूया गयी) (नेपथ्य में) हे गौतमी सारंगरव और सारद्वत मिश्रों से कहदो कि शकुन्तला के संग जाना होगा ॥

प्रियम्बदा । (कान लगाकर) अनसूया विलंब मत करो पिता कन्व हस्तिनापुर के जानेवालों को आज्ञा देरहे हैं ॥

(अनसूया सामिग्री लिये आयी)

अनसूया । मैं आयी चलो (दोनों गयीं)

प्रियम्बदा । (देखकर) वह देखो शकुन्तला सूर्य्य उदय का सिर स्नान करके खड़ी है और बहुतसी ऋषियों की स्त्री टोकरियों में तंदुल लिये असीस देरही हैं चलो हम भी असीस दे आवें ॥

(शकुन्तला और गौतमी और तपस्वियों की स्त्रियां आयीं)

१ तपस्विनी । हे राजवधू तू पति की प्यारी हो ॥

२ तपस्विनी । तू सूरवीर पुत्र की माता हो (आशीर्वाद देकर तपस्विनी गयीं)

दो० सखी । (शकुन्तला के निकट जाकर) कहो सखी स्नान अच्छे हुए ॥

शकुन्तला । (आदर से) सखियो भली आईं यहां बैठो कुछ बातें करें (दोनों बैठ गयीं)

अनसूया । तुम नेक ठैरो तो मैं कुछ मंगलनेग करदूं ॥

शकुन्तला । तुम करोगी सो अच्छा ही करोगी परंतु फिर तुम से मिलने का अवसर कठिन हो जायगा ॥

(यह कहकर आंसूं डालदिये)

दो० सखी । सखी ऐसे मंगल समय जब कि तू सुख भोगने जाती है रोना उचित नहीं है (यह कहकर दोनों ने आंसू डालदिये और वस्त्र पहराने लगीं)

प्रियम्बदा । सखी तेरे इस सुंदर अंग को तो अच्छे वस्त्र आभरण चाहियें थे परंतु अब ये ही साधारण फूल पत्ते आश्रम में मिल सके हम पहराती हैं ॥

(कन्व का चेला अच्छे अच्छे वस्त्र आभूषण लेकर आया)

चेला । रानी को ये वस्त्र आभूषण पहराओ (देखकर सब स्त्री चकित होगयीं)

गौतमी । हे पुत्र हारीत ये वस्त्रआभूषण कहां से आये ॥

चेला । पिता कन्व के तपप्रभाव से ॥

गौतमी । क्या यह मन में बिचारते ही प्राप्त हो गये ॥

चेला । नहीं महात्मा कश्यप की आज्ञा हुई कि शकुन्तला के निमित्त बृक्षों से फूल ले आओ आयुस होते ही तुरन्त किसी बनदेवी ने कोमल हाथ उठा कर चन्द्रमा के तुल्य श्वेत साड़ी दी किसी ने महावर के लिये लाखारस दिया कोई भूषण बनाने लगी ॥

प्रियम्बदा । कमल के मकरन्द को महक की मक्खी भी सिर झुकाती है ॥

गौतमी । (शकुन्तला को देखकर) बनदेवियों से वस्त्राभरण मिलना यह सगुन तुझे सासरे में राजलक्ष्मी का दाता होगा ॥

(शकुन्तला लजागयी)

चेला । गुरुजी मालिनी के स्नानों को गये हैं वहीं जाकर यह वृत्तान्त बनदेवियों के सत्कार का उन से कहूंगा (गया)

अनसूया । (आभूषण पहराती हुई) हे सखी हम बनवासियों ने ऐसे भूषण आगे कभी न देखे थे इस से हम ज्यों के त्यों पहराना नहीं जानती हैं परंतु मैं अपनी चित्र विद्या के बल से सिंगार कराती हूं ॥

शकुन्तला । (मुसक्याकर) हां तेरी चतुराई को मैं जानती हूं ॥

(कन्व कुछ बिचार करते हुए आये)

कन्व । (आप ही आप) आज शकुन्तला जायगी इससे उत्कंठा करके मेरा हृदय स्नेह के बस आंसुओं से भरा आता है जब मुझ बनवासी की यह दशा है तो ग्रहस्थियों की क्या गति बेटी बिदा होने के समय होती होगी (इधर उधर मन बहलाने के लिये टहलने लगे)

प्रियम्बदा । सखी शकुन्तला अब तुम्हारा यथोचित सिंगार हुआ इस साड़ी को जो बनदेवियों ने दी है पहरो ॥

(शकुन्तला ने उठ कर साड़ी पहरी)

गौतमी । हे पुत्री पिता कन्व मिलने को आये हैं ॥

शकुन्तला । (उठ कर लज्जा से) पिता मैं नमस्कार करती हूं ॥

कन्व । पुत्री जैसी प्यारी राजा ययाति को शर्मिष्ठा हुई तैसी ही तू अपने पति को होगी और जैसा चक्रवर्ती पुत्र पुरु शर्मिष्ठा के हुआ तैसा ही तेरे होगा ॥

गौतमी । ऋषि के बचन सत्य होंगे ॥

कन्व । आओ बेटी हुताशन की प्रदक्षिणा करलो (सबने प्रदक्षिणा की) यही अग्नि जो बेदी में प्रज्वलित होकर नैवेद्य को लेती है परंतु मंत्र पढ़ी दाभ को यद्यपि आस पास बिछी है बाधा नहीं पहुंचाती यही अग्नि जो हव्य के गंध से पापों को नाश करती है तेरी रक्षा करेगी (शकुन्तला ने परिक्रमा दी) अब पुत्री तू शुभ घड़ी में बिदा हो (चारों ओर देखकर) संग जानेवाले मिश्र कहां है ॥

(सारंगरव और सारद्वत आये)

दो भाई। मुनि जी हम ये हैं॥

कन्व। पुत्र सारंगरव अपनी बहन को गैल बताओ॥

सारथी। आओ भगवती इधर आओ (सब चले)

कन्व। हे तपोबन के बृक्षो जिस शकुन्तला ने तुम्हारे बिना सींचे कभी जल भी नहीं पिया और जिसे यद्यपि पुष्पपत्र के गहने बनाने का चाउ था परंतु प्यार के मारे तुम्हारे फूल पत्ते कभी न तोड़े और बड़ा आनन्द सदा तुम्हारे मौरने के समय माना इसको तुम पति के घर जाने की आज्ञा दो (कोयल बोली) यह देखो बनदेवियों ने आज्ञा दी (आकाशबानी) शकुन्तला को यह यात्रा मंगलकारी हो और उसके सुख के निमित्त मार्ग में पवन फूलों का पराग बरसावे कमल संयुक्त निर्मल जल के ताल उसको पर्य्यटन में सुख दें और बृक्षों की सघन छाया सूर्य्य के तेज से रक्षा करे॥

सारथी। यह आशीर्बाद किस ने दिया कोकिला ने या तपस्वियों की सहवासिनी बनदेवियों ने॥

गौतमी। हे पुत्री तपस्वियों की हितकारी बनदेवी तुझे आशीर्बाद देती हैं तू भी इन को प्रणाम कर (शकुन्तला ने फिरकर नमस्कार किया)॥

शकुन्तला। (प्रियम्बदा से हौले हौले) हे प्रियम्वदा आर्यपुत्र से फिर भेट होने का तो मुझे बड़ा उत्साह है परंतु इस बन को जिस में इतनी बड़ी हुई हूं छोड़ते आगे को पांव नहीं पड़ते हैं॥

प्रियम्बदा। अकेली तुझी को शोक नहीं है ज्यों ज्यों तेरे बिदा होने का समय निकट आता है तेरे बिरह से बन में बिथा सी छायी जाती है देख हरिणियों ने घास चरना छोड़ दिया है मोर नाचना भूल गये हैं बृक्षों के पत्ते तेरे बिछोह की आंच से पीले हो होकर ऐसे गिरते हैं मानों आंसू टपके॥

शकुन्तला। पिता आज्ञा दो तो इस माधवीलता से भेट लूं क्योंकि इस से मेरा बहिन का सा स्नेह है॥

कन्व। बेटी मिलले मैं भी तुम्हारे स्नेह को जानता हूं॥

शकुन्तला । (लता से भेटकर) हे बनज्योत्सनी यद्यपि तू आम का आश्रय ले रही है तौ भी भुजा पसार के मुझ से मिलले अब मैं तुझ से दूर जा पड़ूंगी परंतु मन तुझी में रहेगा पिता इस लता को मेरी ही समान गिनियो ॥

कन्व । बेटी मेरे मन में बड़ी चिन्ता रहती थी कि तुझे अच्छा पति मिले सो अपने सुकृतों से तैंने योग्य बर पाया अब मैं तेरी प्यारी लता का भी विवाह इस आम से जो उसके निकट मैार रहा है करदूंगा तू विलंब मत कर बिदा हो ॥

शकुन्तला । (दोनों सखियों के पास जाकर) हे सखियो प्यारी माधवी को मैं तुम्हें सोंपती हूं ॥

दो० सखी । हमें किसको सोंपे जाती है ॥

(दोनों ने आंसू डालदिये)

कन्व । अनसूया इस समय रोना न चाहिये शकुन्तला को धीरज बंधाओ ॥

(सब आगे को चले)

शकुन्तला । हे पिता जब यह हरिणी जो गर्भ के बोझ से चलने में अलसाती है और आश्रम के निकट चरती है जने तब इस की कुशल कहला भेजना भूल मत जाना ॥

कन्व । न भूलूंगा ॥

शकुन्तला । (कुछ चलकर और फिरकर) यह कौन है जो मेरे अंचल को नहीं छोड़ता ॥

(फिर पीछे फिरकर देखा)

कन्व । यह वही मृगछैाना है जिसको तैंने पुत्र सम पाला है यह वही है जिसका मुंह जब कभी दाभ से चिर जाता था तू हिंगोट का तेल लगाती थी और जिस को तैंने समा के चांवल खिला खिला कर इतना बड़ा किया है अब यह अपनी पालनेवाली के चरण क्योंकर छोड़े ॥

शकुन्तला । अरे छैाना तू मेरे लिये क्यों रोता है तेरी मा ते तुझे जन्ते ही छोड़ मरी थी मैंने पाल कर तुझे इतना बड़ा किया है तैसे

ही मेरे पीछे पिता कन्व तेरा पालन करेंगे अब तू लौट जा (आंसू डालती चली) ॥

कन्व। बेटी यह समय रोने का नहीं है हम सब फिर मिलेंगे आंसुओं से तेरी दृष्टि रुक रही है इससे ऐसा न हो कि ऊंचे नीचे में पांउ पड़े अब तू अपने धीरज से आंसुओं को रोक ॥

सारथी। हे महात्मा सुनते हैं कि प्यारे मनुष्यों को पहुंचाने वहीं तक जाना चाहिये जहां तक जलाशय न मिले अब वह सरोवर का तट आगया आप हमको आज्ञा देकर आश्रम को सिधारो ॥

कन्व। तो आओ छिनमात्र इस बट की छाया में ठहर लें (सब छाया में गये) राजा दुष्यन्त को क्या संदेसा भेजना योग्य है (बिचार करने लगा)

अनसूया। (शकुन्तला से हौले हौले) हे सखी आज इस आश्रम में सब का चित्त तुझी में लगा है और सब तेरे बिछोह में उदास हैं देख चकई कमल के पत्तों में बैठी बहुतेरा बोलती है परंतु चकवा उत्तर नहीं देता चोंच से चुगा छोड़ तेरेही ओर निहार रहा है ॥

कन्व। पुत्र सारंगरव जब तू राजा के सन्मुख पहुंचे तब शकुन्तला को आगे करके मेरी ओर से यह कहियो कि हम तपस्वियों को केवल तप के धनी जानो और अपने श्रेष्ठ कुल को बिचार कर इस लड़की पर भी सब रानियों की भांति वही स्नेह रक्खो जो तुम्हारे हृदय में आप से आप इसकी ओर उत्पन्न हुआ है इससे अधिक हम क्या मांगे और विशेष प्यार तो भाग्य के आधीन है ॥

सारथी। आप का संदेसा मैंने भली भांति गांठ बांध लिया ॥

कन्व। (शकुन्तला की ओर बड़े मोह से) पुत्री अब तुझे भी कुछ सीख दूंगा क्योंकि यद्यपि हम बनवासी हैं तो भी लोक के व्यवहारों को भली भांति जानते हैं ॥

सारथी। विद्वान पुरुषों से क्या छुपा है ॥

कन्व। बेटी सुन जब तू रनवास में बास पावे तब पति का आदर और गुरुजनों की सुश्रूषा करियो सौतों में सपत्नी भाव से मत रहियो सहेली की भांति टहल करियो कदाचित पति तिरस्कार भी करे तो भी उसकी आज्ञा से बाहर मत हूजियो नौकर चाकरों को एकसा

समझियो और अपस्वार्थी मत हूजियो जो कुलवधू इस धर्म में चलती हैं वे अच्छी गृहस्थिनी कहलाती हैं और जो इस से विमुख होती हैं सो कुल कलंकिनी होती हैं जब पति सन्मुख आवे तो उठकर आदर कीजो और जो कुछ बचन वह कहे सो नम्रता से सुनलीजो उसके चरणों में दृष्टि रखियो और बैठने को आसन दीजो पति की सेवा आप कीजो उससे पीछे सोइयो और पहले जागियो यह सब कुल वधुओं के मुख्य धर्म बड़ों ने कहे हैं कहो गोतमी यह शिक्षा कैसी है ॥

गोतमी । कुल वधुओं के लिये यह उपदेश बहुत श्रेष्ठ है पुत्री इस को भूल मत जाना ॥

कन्व । बेटी आ मुझ से और अपनी सखियों से एक बेर फिर मिलले ॥

शकुन्तला । क्या प्रियम्बदा और अनसूया यहीं से आश्रम को लौट जायंगी ॥

कन्व । बेटी इनको लौट जाने की आज्ञा दे क्योंकि अभी जब तक क्वारी हैं इनको नगर में जाना योग्य नहीं है गोतमी तेरे संग जायगी ॥

शकुन्तला । (कन्व से भेटकर) हाय मैं पिता की गोद से न्यारी होकर मलयगिरि से उखाड़े चंदन के पौधे की भांति बिहूनी भूमि में कैसे जीऊंगी ॥

कन्व । पुत्री ऐसी बिकल मत हो जब तू घर की धनी होगी और राजा पति मिलेगा तब वैभव के कामों में यद्यपि कभी कभी व्याकुल हो जायगी परंतु इस दुख का कुछ बहुत स्मरण न रहेगा और फिर जब तेरे तेजस्वी पुत्र का जन्म होगा तब इस बिछोह को संपूर्ण भूल जायगी (शकुन्तला ऋषि के पैरों में गिर पड़ी) मेरे आशीर्वाद से तेरी मनोकामना पूरी होगी ॥

शकुन्तला । (दोनों सखियों के पास जाकर) आओ सखियो दोनों एकही संग भुजा पसार के भेटलो ॥

अनसूया । (दोनों मिलीं) हे सखी कदाचित राजा तुरन्त तुझको न पहचान ले तो यह मुन्दरी जिसपर उसका नाम खुदा है दिखादीजो ॥

शकुन्तला । (घबराकर) सखी तेरे इस बचन ने तो मेरा हृदय कंपादिया ॥

प्रियम्बदा । प्यारी डरै मत स्नेह में झूठी शंका बहुधा उठती है ॥

सारथी । अब दिन बहुत चढ़गया है चलो बिदा हो ॥
शकुन्तला । (फिर आश्रम की ओर देखकर) हे पिता इस आश्रम को कब फिर देखूंगी ॥
कन्व । बेटी जब कुछ काल पति के साथ तुझे बीत लेगा और तेरे महाबली पुत्र हो लेगा तब उस पुत्र को राज्य सौंपकर अपने पति सहित इस आश्रम में तू फिर आवेगी ॥
गौतमी । चलने का समय बीताजाता है अब पिता को लौट जाने दे मुनिजी आप जाओ ॥
कन्व । हे बेटी मेरे नित्यकर्म में विघ्न मत डाले (स्वांस लेकर) मेरा शोक न घटेगा क्योंकि तेरे सुकुमार हाथों के बोये धान कुटी के सामने नित्य दृष्टि के सोंही रहेंगे अब सिधारो मार्ग मंगलकारी हो (गौतमी और दोनों मिश्रों सहित शकुन्तला गयी)
दो० सखी । (वियोग से शकुन्तला की ओर देखकर) अब तो सखी वृक्षों की ओट हुई ॥
कन्व । (स्वांस लेकर) बेटियो अब तुम्हारी सखी गयी तुम इस सोच को त्याग कर हमारे साथ आओ ॥
दो० सखी । पिता शकुन्तला विना तपोवन सूना लगता है ॥
(सब लौटे)
कन्व । सत्य है तुम को ऐसाही दिखायी देता होगा (बिचार करते हुए चले) शकुन्तला को बिदा करके आज मैं सुचित्त हुआ बेटी किसी दिन पराये ही घर का धन होती है आज मेरा चित्त ऐसा प्रसन्न हुआ है मानों किसी की धरोहर देदी ॥

अंक ५

स्थान राजभवन

(एक बूढ़ा द्वारपाल स्वांसभरता हुआ आया)

द्वारपाल । हाय बुढ़ापे ने मेरी क्या दशा करदी है यही छड़ी जिससे मैं आगे रनवास में द्वारपाली का काम भुगताता था अब बुढ़ापे में मेरे चलने का सहारा बनी है (बाहर से शब्द हुआ कि राजा से कहो

कुछ अवश्य काम है) मुझे कुछ समाचार राजा से भुगताने हैं सो जब रनवास को जायंगे तब कहूंगा परंतु इस में विलंब न होना चाहिये (होले आगे को चला) मैं क्या कहने को था हां यह कि कन्व के चेले आशीर्वाद देने आये हैं हे दैव बुढ़ापा भी मनुष्य को कैसी आपदा है इस अवस्था में मनुष्य की बुद्धि बुझते दीपक की समान कभी मन्द कभी चेतन हो जाती है (इधर उधर फिरकर देखकर) महाराज वे बैठे हैं अभी अपनी प्रजा को सन्तान के सदृश समाधान करके एकान्त में गये हैं जैसे गजराज दिन में सब हाथियों को इधर उधर भेजकर आप शीतल छांह में विश्राम लेने जाता है राजा अभी धर्मासन से उठे हैं इसलिये मुझे उचित नहीं है कि इस समय कन्व के चेले के आने का संदेसा कहूं नहीं तो राजा विश्राम को जाने से रुक जायंगे परंतु जिन के सिर पृथ्वी का भार है उन्हें विश्राम कहां होता है सूर्य्य के रथ में घोड़े सदैव जुते ही रहते हैं पवन दिन रात चला ही करती है शेषनाग सदा पृथ्वी को सिर पर धरे ही रहता है ऐसे ही जिस ने प्रजा की कमायी से छठा भाग लिया उस को किसी समय विश्राम नहीं है (इधर उधर डोलने लगा)

(दुष्यन्त और माढव्य कुछ सेवकों समेत आये)

दुष्यन्त । (अकुलातासा) याचक तो अपना अपना बांछित पाकर प्रसन्नता से चलेजाते हैं परंतु जो राजा अपने अन्तःकरण से प्रजा का निरधार करता है नित्य चिन्ता ही में रहता है पहले तो राज्य बढ़ाने की कामना चित को खेदित करती है फिर जो देश जीतकर वश किये उन की प्रजा के प्रतिपालन का नियम दिन रात मन को बिकल रखता है जैसे बड़ा छत्र यद्यपि घाम से रचा करता है परंतु बोझ भी देता है ॥

(दो ढाड़ी गाते हुए आये)

कड़खा

प० । ढाड़ी । निज कारण दुख नाम हो सहो पराये काज ।
राजकुलन व्यवहार यह सो पालहु महराज ॥
अपने सिर पर लेत हैं बर्षा शीतरु घाम ।
जिमि तरवर हितपथिक के निजतर दे विश्राम ॥

छप्पय

दू० ढाड़ी। दुष्टजनन वशकरन लेत जब दंड प्रचंडहि।
देत दंड उन नरन चलत मर्य्याद जो छंडहि।
करत प्रजा प्रतिपाल कलह के मूल बिनाशहि।
जिहिनिमित्त नृपजन्म धर्म सब करत प्रकाशहि॥
महाराज दुष्यन्तजू चिरजीवो नित नवल वय।
मेटि विघ्न उत्पात सब प्रजहिं करि राखो अभय॥

दोहा

धन बैभव तो और हू बहुत लखियन माहि।
पै सुप्रजाहित तुमहि सें अधिक भेद कछु नाहि॥

सोरठा

राखत बन्धु समान याहतें तुम सबनको।
करत मान सन्मान दुःख न काहू देत हो॥

दुष्यन्त। इस राग के सुन्ने से परिश्रमों का दुख मिटकर चित्त नया सा होगया है॥

माढव्य। सत्य है जैसे थके बैल की सब थकावट उस समय उतर जाती है जब लोग कहते हैं कि ये आये बैलों के राजा॥

दुष्यन्त। (मुसक्या कर) आहा मित्र तू यहीं है आ एकान्त बैठें (राजा और माढव्य दोनों बैठे)

माढव्य। (कान लगा कर) मित्र संगीतशाला की ओर कान लगाओ देखो बीन की तान कैसी मधुर मधुर आती है रानी हंसमती तुम्हारे सुनाने को किसी नये गीत पर अभ्यास कर रही है॥

दुष्यन्त। चुप रह सुन्ने दे॥

द्वारपाल। (आप ही आप) अभी राजा का ध्यान दूसरी ओर है कुछ ठेरकर कहूंगा॥

(अलग चला गया)

(नेपथ्य में राग कालंगड़ा इकताला)

भ्रमर तुम मधु के चाखन हार॥
आम की रस भरी मृदुल मंजरी तासों प्रीति अपार॥

रहसि रहसि नित रस लेवे कों धावत है करि नेम ।
क्यों कल आयी कमल बसेरे कित भूले प्यारी को प्रेम ॥ १ ॥

दुष्यन्त । आहा यह गत कैसा प्रेम उपजाती है ॥

माढव्य । आपने अर्थ समझ लिया मेरी समझ में तो नहीं आया ॥

दुष्यन्त । (मुसक्या कर) एक समय मैं हंसमती पर आशक्त था और अब इतने दिन बिछुरे हो गये हैं इससे उलहना देती है मित्र तू जा हमारी ओर से कह दे कि रानी हम तेरी चैतावनी को समझे ॥

माढव्य । जो आज्ञा महाराज की (होले से कहकर) परंतु तुम तो मित्र ऐसी कहते हो जैसे कोई तीक्ष्ण बरछी की भील को पराये हाथ से पकड़ना चाहे मुझे यह अच्छा नहीं लगता है कि रोसभरी स्त्री से ऐसा संदेसा जाकर कहूं ॥

दुष्यन्त । जा सखा तेरी चतुराई की बातें उसका रोस मिटा देंगी ॥

माढव्य । धन्य है अच्छा संदेसा दिया देखिये क्या हो (बाहर गया)

दुष्यन्त । (आप ही आप) यह क्या कारण है कि यद्यपि मुझे किसी स्नेही का वियोग नहीं है तो भी बिरह का गीतही सुन्ते मेरे चित्त को उदासी हो जाती है यह कारण हो तो हो कि सुन्दर रूप देख कर और मधुर गान सुन कर मनुष्य को जन्मान्तर की प्रीति का स्मरण होता है ॥

द्वारपाल । (उदास होकर और आगे बढ़ कर) महाराज की जय हो हिमालय की तराई के बनबासी दो तपस्वी कुछ स्त्रियों समेत आये हैं और कन्वमुनि का संदेसा लाये हैं महाराज की क्या आज्ञा है ॥

दुष्यन्त । (आश्चर्य से) क्या तपस्वी स्त्रियों के साथ आये हैं ॥

द्वारपाल । हां महाराज ॥

दुष्यन्त । सोमरराट से कह दो कि बनबासियों को बेद की बिधि से सत्कार कर के लिवा लावे मैं भी उन से भेटने योग्य स्थान में बैठता हूं ॥

द्वारपाल । जो आज्ञा ॥

(बाहर गया)

दुष्यन्त । कंचुकी हम को अग्नि स्थान की गैल बताओ ॥

कंचुकी। महाराज यह गैल है (आगे आगे चला) यह द्वार जिस में
दाभ बिछे हैं और होमधेनु बंधी है अग्निहोतृस्थान का है आप
पधारिये ॥

नौकरों के कंधों पर सहारा लेकर दुष्यन्त यज्ञस्थान की देहली पर गया)

दुष्यन्त। कन्व मुनि ने क्या संदेसा भेजा होगा कहीं तपस्वियों के तप
में किसी ने विघ्न तो नहीं डाला अथवा तपोबन के जीवों को किसी
ने सताया तो नहो अथवा मेरे पापों से तपस्वियों की बोयी लताबेलों
का फूलना तो नहीं मिट गया ये सब असमंजस मेरे चित्त को व्याकुल
करते हैं ॥

कंचुकी। जिस बात की चिन्ता महाराज को है सो कभी न हुई होगी
क्योंकि तपोबन के विघ्न तो केवल आप के धनुष की टंकार ही से
मिट जाते हैं मेरे जाने ये तपस्वी महाराज के सुकर्मों से प्रसन्न
होकर धन्यवाद देने आये हैं ॥

(सारद्वत और सारंगरव और गौतमी शकुन्तला का हाथ गहे हुए
आये और उन के आगे आगे बूढ़ा द्वारपाल और पुरोहित भी आये)

द्वारपाल। इधर आओ महात्माओ इस मार्ग आओ ॥

सारंगरव। हे मित्र सारद्वत देखो जिस राजा के आधीन संसार के
सर्वसुख हैं और जो सब मनुष्यों का आदर सन्मान करता है सो वह
बिराजमान है यहां कोई कैसा ही आवे निरादर किसी का नहीं होता
है परंतु मेरा चित्त सदा संसारिक बातों से बिरक्त रहा है इसलिये
आज बहुत से मनुष्यों में आने से मन घबराता है ॥

सारद्वत। सत्य है जब से नगर में धसे हैं तब से मेरी भी यही दशा है
परंतु मैंने तो अपना मन ऐसे समझा लिया है जैसे कोई निर्मल जल
से न्हाया किसी तेल मिट्टी लपेटे हुए के साथ परबस पड़जाय अथवा
शुद्ध मनुष्य को अशुद्ध के साथ और जागते हुए को सोते के साथ और
स्वतंत्र को बंधुए के साथ रहना हो और वह अपने मन को धीरज दे ॥

पुरोहित। इसी से तो आप सरीके सज्जनों की बड़ाई है ॥

शकुन्तला। (बुरा शकुन देखकर) हे माता मेरी दाहनी आंख क्यों
फरकती है ॥

गौतमी। दैव कुशल करेगा तेरे भर्त्ता के कुलदेव अमंगलों को दूर करके तुझे सुख देंगे ॥

(सब आगे को बढ़े)

पुरोहित। (राजा को बतला कर) हे तपस्वियो वर्णाश्रम की रक्षा करने वाले महाराज आसन पर बैठे तुम्हारी बाट हेरते हैं ॥

सारंगरव। यही हमारी चाह थी क्योंकि सदा की रीति है कि फल आये वृक्ष नवता है सुखद जल धारन करके मेघ झुकता है ऐसे ही परोपकारी नर सम्पति पाकर अभिमान त्यागते हैं ॥

कंचुकी। महाराज ये ऋषि लोग आप के सन्मुख चले आते हैं इससे आप में इन का स्नेह दिखायी देता है ॥

दुष्यन्त। (शकुन्तला की ओर देख कर) आहा यह नारी कौन है जिस का रूप वस्त्रों में झलक रहा है तपस्वियों के बीच में ऐसी दीप्यमान है मानों पीले पत्तों में नयी कोंपल ॥

कंचुकी। महाराज यह तो प्रत्यक्ष ही है कि रूप इस भाग्यवती का दर्शन योग्य है ॥

दुष्यन्त। रहने दो परायी स्त्री देखनी उचित नहीं है ॥

शकुन्तला। (आप ही आप अपने हृदय पर हाथ रखकर) हे हृदय तू क्यों धड़कता है राजा के प्रथम मिलाप का ध्यान करके धीरज धर ॥

पुरोहित। (आगे जाकर) महाराज का कल्याण हो इन तपस्वियों का आदर सत्कार बिधिपूर्वक हो चुका अब ये अपने गुरु का संदेसा लाये हैं सो सुन लीजिये ॥

दुष्यन्त। (आदर से) सुन्ता हूं कहने दो ॥

दोनों भाई। (हाथ उठा कर) महाराज की जय रहे ॥

दुष्यन्त। तुम सब को मैं भी प्रणाम करता हूं ॥

दोनों भाई। आप के कल्याण हों ॥

दुष्यन्त। तुम्हारे तप में तो कुछ विघ्न नहीं पड़ा ॥

सारंगरव। जब आप तपस्वियों के रखवाले बने हो फिर विघ्न क्योंकर पड़ेगा सूर्य के प्रकाश में अंधेरा कब रह सकता है ॥

दुष्यन्त । (आप ही आप) जो मेरा ऐसा प्रताप है तो अब राजा शब्द मुझ में यथार्थ हुआ (प्रगट) कन्वमुनि प्रसन्न हैं ॥

सारंगरव । महाराज कुशल तो तपस्वियों के सदा आधीन रहती है गुरुजी ने आप की अनामय पूंछ कर यह कहा है ॥

दुष्यन्त । क्या आज्ञा की है ॥

सारंगरव । कि आप का इस कन्या से बिवाह हुआ सो हमने प्रसन्नता से अंगीकार किया क्योंकि आप तो सज्जन शिरोमणि हो और हमारी शकुन्तला भी साक्षात् सुशीलता का रूप है अब कोई ब्रह्मा को यह दोष न देगा कि अनमिल जोड़ी मिलाता है तुम्हारे दोनों के समान गुण हैं ऐसे दूलह दुलहिन की जोड़ी मिला कर ब्रह्मा नाम धराई से बचा शकुन्तला तुम से गर्भवती है अब इस को अपने रनवास में लो और दोनों मिलकर शास्त्र अनुसार व्यवहार करो ॥

गौतमी । हे राजा तुम बड़े मृदुल स्वभाव हो इस से मेरे भी जी में कुछ कहने को आती है ॥

दुष्यन्त । (मुसक्या कर) हां निःसंदेह कहो ॥

गौतमी । शकुन्तला अपने पिता के आने तक न ठैरी और आप ने भी अपने कुटुम्बियों से कुछ न पूछी आप ही आप दोनों ने ब्याह करलिया लो अब निधड़क बातचीत करो हम तो जाते हैं ॥

शकुन्तला । (आप ही आप) देखूं अब यह क्या कहे ॥

दुष्यन्त । (क्लेश में आकर आपही आप) यह क्या वृत्तान्त है ॥

शकुन्तला । (आप ही आप) हे दई राजा ने यह संदेसा ऐसे निरादर से क्यों सुना ॥

सारंगरव । (आप ही आप) राजा ने अभी होले से कहा है कि यह क्या वृत्तान्त है सो ऐसा क्यों कहा (प्रगट) राजा तुम लोकाचार की सब बातों को जानते हो स्त्री कैसी ही सुशीलता से रहे फिरभी पति के होते पीहर रहने में लोग चवाउ करते हैं इसलिये अब हमारी इच्छा है कि चाहे इस पर तुम्हारा प्यार हो चाहे न हो यह तुम्हारे ही घर रहे तो भली है ॥

दुष्यन्त । तुम क्या कहते हो क्या मेरा इस का कभी बिवाह हुआ है ॥

शकुन्तला । (उदास होकर आप ही आप) अरे मन जो तुझे डर था सोई आगे आया ॥

सारंगरव । महाराज क्या अपने किये को पछताते हो ॥

दुष्यन्त । तुम किस भरोसे पर इस निर्मूल कहानी को सच्ची बनाया चाहते हो ॥

सारंगरव । (क्रोध से) जिन को ऐश्वर्य्य का मद होता है उन का चित्त स्थिर नहीं रहता ॥

दुष्यन्त । यह बचन तुम ने बहुत कठोर कहा ॥

गौतमी । (शकुन्तला से) हे पुत्री अब बहुत लाज मत कर ला मैं तेरा घूंघट खोलदूं जिससे तेरा भर्त्ता तुझे पहचान ले (घूंघट खोल दिया)

दुष्यन्त । (शकुन्तला को देख कर आप ही आप) जब मैं यह बिचारता हूं कि इस सुन्दरी का पाणिग्रहण कभी आगे मैंने किया है या नहीं तौ मेरी गति उस भौंरे की सी हो जाती है जो प्रात:काल ओस की बूंद भरे कुन्द पर भ्रमता है न छोड़ सके न बैठ सके ॥

कंचुकी । (होले दुष्यन्त से) महाराज अपने धर्म और अधिकार में सावधान हैं नहीं तौ ऐसे स्त्री रत्न को अपने रनवास में आने से कौन करोता है ॥

सारंगरव । महाराज चुप क्यों हो रहे हो ॥

दुष्यन्त । हे तपस्वी मैं बार बार सुध करता हूं परंतु स्मरण नहीं होता कि इस स्त्री से कब मेरा बिवाह हुआ और यह बात क्षत्रीधर्म से विरुद्ध है कि जिस को पराया गर्भ हो उसे मैं अपने रनवास में लूं ॥

शकुन्तला । (आप ही आप) हे दैव जो मेरे संग ब्याह ही होने में सन्देह है तौ अब मेरी बहुत दिन की लगी आसा टूटी ॥

सारंगरव । महाराज ऐसे बचन मत कहो जिस ऋषि ने तुम्हारे अपराध को भूल अपनी कन्या ऐसे भेज दी है जैसे कोई चोर के पास अपना धन भेज दे उस का अपमान मत करो ॥

सारद्वत । सारंगरव तुम ठैरो शकुन्तला अब तू आप ही कुछ पता बतला कर अपने पति को सुधि दिला यह तुझे भूला जाता है ॥

शकुन्तला। (आप ही आप) जो वह स्नेह ही न रहा तो अब सुधि दिलाये क्या होता है और जो इस जीव को दुख ही बदा है तो कुछ बस नहीं है परंतु इससे दो बातें तो अवश्य करूंगी॥

(प्रगट) हे आर्यपुत्र (फिर रुक गयी) और जो इस शब्द में कुछ संदेह है तो हे पुरुवंशी यह तुम को उचित नहीं है कि आगे तपोबन में ऐसी प्रीति बढ़ायी और अब ये निठुर बचन कहते हो॥

दुष्यन्त। (कानपर हाथ धर कर) क्या तू मुझ निर्दोषी को कलंक लगाने के लिये कुछ छल करती है देखो जो नदी मर्य्याद छोड़ कर चलती है वह अपना ही तट खसा कर गदली होती है और तट के बृक्षों को गिरा कर अपनी शोभा बिगाड़ती है॥

शकुन्तला। जो तुम सुधि भूल कर सत्य ही मुझे परनारी समझे हो तो लो पते के लिये तुम्हारे ही हाथ की मुन्दरी देती हूं जिस में तुम्हारा नाम खुदा है॥

दुष्यन्त। अच्छी बात बनायी॥

शकुन्तला। (उंगली को देखकर) हाय हाय मुन्दरी कहां गयी (बड़ी व्याकुलता से गौतमी की ओर देखती हुई)॥

गौतमी। जब तैने शक्रावतार के निकट शचीतीर्थ में जलआचमन किया था तब मुन्दरी गिर गयी होगी॥

दुष्यन्त। (मुसक्या कर) त्रियाचरित्र यही कहलाता॥

शकुन्तला। यह बिधि ने अपना बल दिखाया है परंत अभी एक पता और भी दूंगी॥

दुष्यन्त। सो भी कहो॥

शकुन्तला। उस दिन की सुधि है या नहीं जब आपने माधवीकुंज में कमल के पत्ते से जल अपने हाथ में लिया॥

दुष्यन्त। तब क्या हुआ॥

शकुन्तला। उसी छिन एक मृगछौना जिस को मैंने पुत्र की भांति पाला था आगया आप ने बड़े प्यार से कहा कि आ बच्चे पहले तूही पानी पीले उस ने तुम्हें बिदेसी जान तुम्हारे हाथ से जल न पिया मेरे हाथ से पीलिया तब तुमने हंस कर कहा कि सब कोई अपने ही

संघती को पत्याता है तुम दोनों एक ही बन के बासी हो और एक से मनोहर हो ॥

दुष्यन्त । चतुर स्त्रियों के मधुर बचनों ही से तो मनुष्य के मन डिगते हैं ॥

गौतमी । बस राजा ऐसे कठोर बचन कहने योग्य नहीं हैं यह कन्या तपोबन में पली है यह दुखिया छल क्या जाने ॥

दुष्यन्त । हे तपस्विनी बिना सिखाये भी स्त्रीजात की चतुराई पुरुषे से अधिक होती है सो यह बात केवल मनुष्यों ही में नहीं है सब जीव जंतु में है और कदाचित स्त्री अच्छी सिखायी जायं तो न जानिये क्या करें देखो कोयल अपने अंडे बच्चे दूसरे पक्षियों से जिन से उस का कुछ सम्बन्ध नहीं है पलवाती है ॥

शकुन्तला । (क्रोध कर के) हे निर्लज्ज तू अपनासा कुटिल हृदय सब का जानता है तुझ सा पाखंडी और कपटी राजा न कोई पृथ्वी पै हुआ है न आगे होगा तैने धर्म के भेष में कपट ऐसे दुराया है मानों गहरे कुए का मुख घास फूस से ढका है ॥

दुष्यन्त । (आप ही आप) इस का कोप मेरे मन में सन्देह उपजाता है कि इस का कहना कहीं सच्चा ही न हो रोस से इस की आंखें लाल हो गयी हैं और जब कठोर बचन बोलती है तो मुख से शब्द टूटते हुए निकलते हैं लाल होठ ऐसे कांपते हैं मानों तुसार का मारा बिंबाफल और भौंहें यद्यपि सीधी हैं परंतु रोस में टेढ़ी हो गयी हैं जब अपने साधारण रूप की छबि से यह मुझे न छलसकी तब रिस का मिस कर के भृकुटी चढ़ायी है (प्रगट) हे बाला दुष्यन्त के शील स्वभाव को सब जानते हैं परंतु तेरा प्रयोजन क्या है सो कह ॥

शकुन्तला । (व्याजस्तुति की भांति) हां सत्य है तुम राजा लोग ही तो सब बात के प्रमाण होते हो और तुम ही यथार्थ धर्म्म और लोकरीति जानते हो स्त्री दुखिया कैसी ही लाजवती और सुलक्षणी हो तो भी धर्म नहीं जानती है न सच्च बोलना जानती है अच्छी घड़ी में मन भावते को ढूंढ़ने आयी और अच्छे मुहूर्त्त में पुरुवंशी राजा से व्याह हुआ तेरे मीठे बचनों ने मेरे विश्वास को जीत लिया

था परंतु हृदय में छिपा हुआ वह अस्त्र निकला जिससे मेरे कलेजे को घाव लगा (घूंघट करके रोने लगी)

सारंगरव । इस राजा की चपलता देख कर मेरा मन लजाता है अब से जो कोई गुप्त सम्बन्ध करे उसे चाहिये कि पहले परीक्षा करले क्योंकि जो प्रीति बिना स्वभाव पहचाने जुड़जाती है थोड़े ही काल में बैर हो जाती है ॥

दुष्यन्त । क्या तुम इसी की चिकनी चुपड़ी बातों को प्रतीति कर के मुझे घोर पाप में डाला चाहते हो ॥

सारंगरव । (अवज्ञा करके) उत्तर था सो सुन लिया यहां इस कन्या को कि जिस ने जन्मभर छल का नाम भी नहीं सीखा है कौन प्रतीति करता है यहां तो वेही सच्चे हैं जो दूसरे को दोष लगाना पढ़े हैं ॥

दुष्यन्त । तुम बड़े सत्यवादी हो ठीक कहते हो मैं ऐसा ही हूं परंतु यह कहो इस स्त्री को दोष लगाने से मुझे क्या मिलेगा ॥

सारंगरव । भारी बिपत्ति ॥

दुष्यन्त । नहीं पुरवंशियों के भाग्य में बिपत्ति कभी नहीं लिखी ॥

सारद्वत । हे सारंगरव इस बाद से क्या अर्थ निकलेगा हम तो गुरु का संदेसा लाये थे सो भुगता चुके अब चलो और हे राजा यह शकुन्तला तेरी बिवाहिता स्त्री है चाहे तू इसे रख चाहे छोड़ स्त्री के ऊपर पति को सब अधिकार होता है आओ गोतमी चलो (दोनों मिश्र और गोतमी चले)

शकुन्तला । हाय यह तो छलिया निकला अब क्या तुम भी मुझे छोड़ जाओगे (उन के पीछे चल खड़ी हुई)

गोतमी । (पीछे फिर कर) बेटा सारंगरव शकुन्तला तो बिलाप करती यह पीछे पीछे आती है दुखिया को निरमोही पति ने छोड़ दिया अब यह क्या करे ॥

सारंगरव । (क्रोध करके शकुन्तला से) हे अभागी तू पति के औगुन देख कर क्या स्वतंत्र हुआ चाहती है ॥

(शकुन्तला ठैर गई और कांपने लगी)

सार्ङ्गरव । हे भाग्यवान सुन ले जो तू ऐसी ही है जैसा तेरा पति कहता है तौ पिता के घर रहने का तेरा क्या अधिकार रहा और जो तू अपने मन से सच्ची है तौ पति के घर में दासी होकर भी रहना अच्छा है अब तू यहीं ठैर हम आश्रम को जाते हैं ॥

दुष्यन्त । हे तपस्वियो क्यों इसे झूठी आशा देते हो देखो चन्द्रमा कमोदनी ही को प्रसन्न करता है और सूर्य कमल ही को खिलाता है ऐसे ही जितेन्द्रिय पुरुष परायी स्त्री से सदा बचे रहते हैं ॥

सार्ङ्गरव । सत्य है परंतु तू ऐसा पुरुष है कि अधर्म और अकीर्ति से डरता है तौ भी अपनी बिवाहिता को छोड़ते नहीं लजाता और मिस यह बनाया है कि प्रजाउपकार के कामों में अपने बचन को भूल गया है ॥

दुष्यन्त । (अपने पुरोहित से) न जानूं मैं हीं भूलगया हूं या यही झूंठ कहती है हे पुरोहित तुम कहो दोनों पापों में से कौनसा बड़ा है अपनी बिवाहिता स्त्री को त्यागना अथवा परायी को ग्रहण करना ॥

पुरोहित । (बहुत सोच कर) महाराज इन दोनों के बीच में एक तीसरा उपाय और है सो करना उचित है अर्थात् यह कि जब तक इस के पुत्र का जन्म हो तब तक मेरे घर में निवास करने दो ॥

दुष्यन्त । यह क्यों ॥

पुरोहित । अच्छे अच्छे ज्योतिषियों ने आगे ही कह रक्खा है कि आप के चक्रवर्ती पुत्र होगा सो कदाचित् इस मुनिकन्या के ऐसा ही पुत्र जन्मे और उसके लक्षण चक्रवर्ती के से पाये जायं तौ इस को आदर पूर्वक रनवास में लेना नहीं तौ यह अपने पिता के आश्रम को जायगी ॥

दुष्यन्त । अच्छा जो तुम्हारी इच्छा हो ॥

पुरोहित । (शकुन्तला से) आ पुत्री मेरे पीछे चली आ ॥

शकुन्तला । हे धरती तू मुझे ठौर दे मैं समा जाऊं ॥

(रोती हुई पुरोहित के पीछे पीछे गयी और तपस्वी और गौतमी दूसरी ओर गये शकुन्तला को जाती देखकर राजा खड़ा सोचने लगा परंतु शाप के बस फिर भी सुध न आयी)

(नेपथ्य में) अहा बड़े आश्चर्य्य की बात हुई॥

दुष्यन्त। (कान लगाकर) क्या हुआ॥

(पुरोहित फिर आया)

पुरोहित। महाराज बड़ा अचम्भा हुआ जब यहां से निकलकर कन्व के चेले गये और शकुन्तला अपने भाग्य की निन्दा करती हुई बांह उठा कर रोने लगी॥

दुष्यन्त। तब क्या हुआ॥

पुरोहित। तब अप्सरातीर्थ के निकट स्त्री के रूप में कुछ बिजली सी आयी सो शकुन्तला को उठा छाती से लगाकर लेगयी॥

(सब आश्चर्य करने लगे)

दुष्यन्त। मुझे पहिले ही भ्यास गयी थी कि इस में कुछ छल है सोई हुआ अब इस बात में तर्क करना निष्फल है तुम विश्राम करो॥

पुरोहित। महाराज की जय रहे॥

(बाहर गया)

दुष्यन्त। द्वारपालिनी इस समय मेरा चित्त बहुत व्याकुल होरहा है आ तू मुझे शयनस्थान की गैल बता॥

द्वारपालिनी। महाराज इस मार्ग आइये॥

दुष्यन्त। (चलता हुआ आप ही आप) मैं बहुतेरा सुध करता हूं परंतु ध्यान में नहीं आता कि मुनिकन्या से कब मेरा बिवाह हुआ और हृदय उखता कर ऐसा होगया है कि इस स्त्री के वचनों को प्रतीति करना चाहता है॥

अंक ६

स्थान एक गली

(कोतवाल और दो प्यादे एक मनुष्य को बांधे हुए लाये)

प० प्यादा। (बंधुए को पीटता हुआ) अरे कुम्भिलक बतला यह अंगूठी जिसके हीरे पर राजा का नाम खुदा है तेरे हाथ कहां से आयी॥

कुम्भिलक। (कांपता हुआ) मुझे मत मारो मेरा ऐसा अपराध नहीं है जैसा तुम समझे हो॥

प० प्यादा। क्या तू कोई श्रेष्ठ ब्राह्मण है कि सुपात्र जान राजा ने यह अंगूठी तुझे दक्षिणा में दी हो॥

कुम्भिलक। सुनो मैं शक्रावतार तीर्थ का धीमर हूं॥

दू० प्याद। कह क्या तेरी जाति पांति पूछते हैं॥

कोतवाल। हे सूचक इसे अपना सब वृत्तान्त कहने दो कहरे सब कहदे जब तक यह कहे तब तक इसे बांधो मारो मत॥

दो० प्यादे। सुन्ता है रे या नहीं जैसे कोतवाल जी अज्ञा देते हैं वैसे कर॥

कुम्भिलक। मैं तो जालबंसी से मछली पकड़ के अपने कुटुंब का पालन करता हूं॥

कोतवाल। (हंसकर तेरी बहुत अच्छी आजीविका है॥

कुम्भिलक। महाराज मुझे क्या दोष है यह तो हमारा कुलधर्म्म ही है परंतु हम लोगों में भी बहुतेरे दयावान होते हैं॥

कोतवाल। अच्छा कहेजा॥

कुम्भिलक। एक दिन एक रोहू मछली मैंने पकड़ी उस के पेट में यह हीरा जड़ी अंगूठी निकली इसे बेचने के लिये मैं दिखला रहा था तब तक तुम ने आ थामा इतना ही अपराध मेरा है अब जैसा तुम्हारे धर्म में लिखा हो तैसा करो चाहो मारो चाहो छोड़ो॥

कोतवाल। (अंगूठी को सूंघ कर) सत्य है इस अंगूठी में मछली की बास आती है इससे निश्चय यह मछली के पेट में रही होगी चलो राजा के सामने चलें॥

दो० प्यादे। चलो जी॥

(सब चले)

कोतवाल। सूचक तुम इस बड़े फाटक पर चौक में ठैरे रहो मैं अंगूठी का वृत्तान्त सुनाकर राजा की आज्ञा ले आऊं॥

दो० प्यादे। अच्छा आओ (कोतवाल गया)

प० प्यादा। हे जालुक इस चोर के मारने को मेरे हाथ खुजाते हैं॥

कुम्भिलक । मुझ निरपराधी को क्यों मारना चाहिये ॥

दू० प्यादा (देख कर) कोतवाल जी तो वे आते हैं राजा ने भला तुरंतही निबेड़ा कर दिया अब कुम्भिलक तू या तो छूट ही जायगा नहीं तो कुत्तों गिद्धों का भक्षण बनेगा ॥

(कोतवाल फिर आया)

कोतवाल । धीमर को ॥

कुम्भिलक । (घबरा कर) हाय अब मैं मरा ॥

कोतवाल । छोड़दो महाराज कहते हैं कि अंगूठी का वृत्तान्त हम जानते हैं धीमर का कुछ अपराध नहीं है इसे तुरंत छोड़ दो ॥

दू० प्यादा । जो आज्ञा आज चोर यम के घर से बच आया (छोड़ दिया)

कुम्भिलक । (हाथ जोड़ कर) आप ही ने मेरे प्राण बचाये हैं ॥

कोतवाल । अरे जा तेरे भाग्य खुलगये राजा की आज्ञा है कि अंगूठी का पूरा मोल तुझे मिले सो यह ले (थैली धीमर को दी)

कुम्भिलक । (हाथ जोड़ कर) मैं इस समय अपने तन में फूला नहीं समाता हूं ॥

प० प्यादा । फूला क्यों समायगा तू सूली से उतर कर हाथी पर चढ़ा है ॥

दू० प्यादा । राजा के प्रसन्न होने का क्या कारण है अंगूठी तो कुछ ऐसी बड़ी वस्तु नहीं है ॥

कोतवाल । प्रसन्न होने का कुछ यह भी कारण है कि अंगूठी बड़े मोल की है परंतु मुख्य हेतु मुझे यह जानपड़ा कि अंगूठी को देख कर राजा को अपने किसी प्यारे की सुध आगई क्योंकि यद्यपि राजा का स्वभाव गंभीर है तो भी जिस समय अंगूठी देखी बिकल होकर मुर्छा आगयी ॥

दू० प्यादा । तो आपने राजा को बड़ा प्रसन्न किया ॥

प० प्यादा । हां इस धीमर के प्रताप से (धीमर को कड़ी आंखों से देखा)

कुम्भिलक । रिस मत हो अंगूठी का आधा मोल मदिरा पीने को तुम्हें भी दूंगा ॥

दो० प्यादे । तो तू हमारा मित्र है मदिरा हम को बहुत प्रिय है चलो हम तुम साथही साथ हाट को चलें ॥

(बाहर गये)

स्थान राजभवन की फुलवाड़ी

(मिश्रकेशी अप्सरा पवन में दिखायी दी)

मिश्रकेशी। एक करतब तो वह था जो मैंने अप्सरा तीर्थ पर किया अब चल कर देखूं राजऋषि की क्या दशा है शकुन्तला मुझे बहुत प्यारी है काहे से कि वह मेरी सहेली की बेटी है और मैं मेनका की आज्ञा से यह वृत्तान्त देखने आयी हूं (चारों ओर देख कर) आहा आज उत्सव के दिन राजकुल में क्या उदासी छा रही है मुझे यह तो सामर्थ्य है कि बिना प्रगट हुए भी सब वृत्तान्त जानलूं परंतु मेनका की आज्ञा मान्नी चाहिये इसलिये बृक्षों की ओट में बैठ कर देखूंगी कि क्या होता है॥

(उतर कर एक स्थान में बैठगयी)

दो चेरी आम की मंजरी को

देखती हुई आयीं)

पहली चेरी। इस आम की हरी डालपर नयी मंजरी झोंका लेती कैसी शोभायमान है मानों बसन्त की मूर्छा जगाने को संजीवनी आयी है इन में से एक डाली बसन्त की भेट करूंगी॥

दूसरी चेरी। हे परभृतका तू आप ही आप क्या कह रही है॥

पहली चेरी। हे मधुकरी आम की मंजरी को देख कोकिला उन्मत्त होती ही है सो तू जान्ती है कि मेरे नाम का भी कोकिला ही अर्थ है॥

दूसरी चेरी। (प्रसन्न होकर और निकट आकर) क्या प्यारी बसन्त ऋतु आ गयी॥

पहली चेरी। हां तेरे मधुर गीत गाने के दिन आगये॥

दूसरी चेरी। हे सखी बसन्त की भेट को मैं इस बृक्ष से सोंधे के गहने उतारूंगी तू मुझे सहारा देकर उचकादे॥

पहली चेरी। जो मैं सहारा दूंगी तो भेट के फल में से भी आधा लूंगी॥

दूसरी चेरी। जो तू यह न कहती तो क्या आधा फल न मिलता मुझे तुझे बिधना ने एक प्रान दो देह बनाया है (एड़ी उचकाकर बायें हाथ से डाल पकड़ो और दाहने हाथ से (मंजरी तोड़ी) आहा ये

कलियां तो अभी खिली भी नहीं हैं यह देखो एक मंजरी खिल गयी है इस में कैसी सुहावनी महक आती है (मुट्ठी भरकर कलियां तोड़लीं)

(द्वारपाल आया)

द्वारपाल। (रिस होकर) हे बाउली तू क्यों कच्ची कलियों को तोड़ती है राजा ने तो आज्ञा देदी है कि अब के बरस बसन्तोत्सव नहो॥

दोनों चेरी। (डरती हुई) अब का हमारा अपराध क्षमा करो हम ने नहीं जाना था कि राजा ने ऐसी आज्ञा दी है॥

द्वारपाल। तुम ने न जाना रूख पेड़ों और पशु पक्षियों ने भी तो राजा के साथ उदासी मानी है देखो ये कलियां बहुत दिनों से निकली हैं परंतु खिलती नहीं हैं और कुरबक का फूल यद्यपि लग आया है परंतु अब तक कली ही बना है शिशिर बीतने को है तो भी कोकिला की बाणी कंठ ही में रुक रही है॥

दोनों चेरी। (आप ही आप) इस में सन्देह नहीं है कि यह राजा ऐसा ही प्रतापी है॥

पहली चेरी। कुछ दिन से हमको गन्धर्वलोक के अधिकारी मित्रबसु ने राजा के चरण देखने को भेजा है तब से हम राजा के उपबनों में अनेक क्रीड़ा करती फिरती थीं इसलिये राजा की यह आज्ञा हमने नहीं सुनी॥

द्वारपाल। हुआ सो हुआ फिर ऐसा मत करना॥

दोनों चेरी। राजा की आज्ञा तो हम मानेहींगी परंतु हे द्वारपाल जो हम इस वृत्तान्त के सुन्ने योग्य हों तो कृपा करके बताओ कि राजा ने क्यों बसन्तोत्सव का होना बरजा है॥

मिश्रकेशी। (आप ही आप) राजाओं को रागरंग सदा प्रिय होता है इसलिये कोई बड़ा ही कारण होगा जिससे दुष्यन्त ने ऐसी आज्ञा दी है॥

द्वारपाल। (आप ही आप) यह तो प्रसिद्ध बात है इस के कहदेने में क्या दोष है (प्रगट) क्या शकुन्तला के त्याग का समाचार तुम्हारे कानों तक नहीं पहुंचा है॥

पहली चेरी। हां अंगूठी मिलजाने तक का वृत्तान्त तो हम ने गन्धर्व लोक के नायक से सुन लिया है॥

द्वारपाल । तो अब मुझे थोड़ा ही कहना पड़ेगा सो सुनो जब अपनी अंगूठी को देख कर राजा को सुध आयी तो तुरन्त कह उठा कि शकुन्तला मेरी बिवाहिता है जिस समय मैंने उसे त्यागा मेरी बुद्धि ठिकाने न थी फिर राजा ने बहुत बिलाप और पछतावा किया और तभी से संसार को सब छोड़ बैठा है न तो प्रजा के उपकार में चित्त लगता है न दिन प्रतिदिन राजसभा होती है रात रात भर नींद नहीं आती सेज पर करवटें लेते कटती हैं और जब उठता है तो सीधी कोई बात मुख से नहीं निकलती बिथा का मारा रनवास की स्त्रियों को शकुन्तला ही शकुन्तला कहकर पुकारता है फिर लाज का मारा घुटने पर सिर रखकर बैठा रहता है ॥

मिश्रकेशी । (आप ही आप) यह बात तो मुझे बड़ी प्यारी लगी ॥

द्वारपाल । इसी उदासी के कारण बसन्तोत्सव बरज दिया गया है ॥

दो० चेरी । यह बरजना बहुत योग्य है ॥

(नेपथ्य में) गैल करो महाराज आते हैं ॥

द्वारपाल । (कान लगा कर) हे सखियो राजा आते हैं अब तुम जाओ (दोनों गयीं)

(दुष्यन्त पछताता हुआ आया और आगे आगे एक कंचुकी और साथ माढव्य आया)

द्वारपाल । (राजा की ओर देखकर) सत्य है तेजस्वी पुरुष सभी अवस्था में शोभायमान होते हैं हमारे स्वामी यद्यपि उदासी में हैं तो भी कैसे दिव्य दिखायी देते हैं महाराज ने शृंगार का त्याग कर दिया है और शरीर ऐसा दुर्बल होगया है कि भुजबंद सरक सरक कर कलाई पर आता है गहरी सांस लेते लेते होठों की लाली सूखगयी है और जागने और चिन्ता करने से आंखें उनींदी हो रही हैं तो भी अपने तेजों के गुन से ऐसे दीप्तिमान हैं मानों सान का चढ़ा हीरा ॥

मिश्रकेशी । (दुष्यन्त की ओर देखकर आप ही आप) शकुन्तला अपना अनादर और त्याग हुए पर भी इस राजा के बिरह में व्यथित हो रही है सो क्यों न हो यह इसी योग्य है ॥

दुष्यन्त । (बहुत सोच में आगे बढ़ कर) हे मन जब प्यारी मृगनयनी ने तुझे स्नेह की सुध दिलायी तब तू सोता ही रहा अब पछताने को क्यों जगा है ॥

मिश्रकेशी । (आप ही आप) वह अन्त में सुख पावेहीगी ॥

माढव्य । (आप ही आप) हमारे राजा को स्नेह की पवन के झोके ने फिर सताया इस रोग की क्या औषधि करें ॥

द्वारपाल । (दुष्यन्त के पास जाकर) महाराज की जय हो मैं बन उपबनों को देख आया आप चलकर जहां इच्छा हो बिश्राम कीजिये ॥

दुष्यन्त । (द्वारपाल की बात पर कुछ ध्यान न देकर) कंचुकी तुम राजमंत्री से कहदो कि हमारा बिचार कुछ दिन के लिये नगर से चलेजाने का है इससे राजसिंहासन सूना रहेगा जो कुछ काम काज प्रजासम्बन्धी हो लिख कर हमारे पास भेज दिया करें ॥

कंचुकी । जो आज्ञा (बाहर गया)

दुष्यन्त । (द्वारपाल से) पर्वतायन तू अपने काम में असावधानी मत करियो ॥

द्वारपाल । जो आज्ञा महाराज की (बाहर गया)

माढव्य । अच्छा तुमने इस जगह को निर्मल किया अब इस रमणीक कुंज में मन बहलाओ ॥

दुष्यन्त । हे माढव्य जब कोई किसी को कुछ दोष लगावे और वह निरपराधी ठैरे तो दोष लगानेवाला कैसा दुख पालता है देखो मुनिसुता के स्नेह की सुधि तब तो मुझे अज्ञान ने भुलादी अब दुखदाई मानों अपने धनुष पर आम की मंजरी का नया तीर चढ़ा कर आया है ॥

माढव्य । नेक धीरज धरो मनोभव के तीरों को अभी लाठी से तोड़े डालता हूं (आम की मंजरियों को झूरने लगा)

दुष्यन्त । (ध्यान करता हुआ) हां मैंने ब्रह्मा का कर्त्तव्य जाना (माढव्य से) कहो मित्र अब कहां बैठ कर शकुन्तला की उनहारि की लताओं को देखूं ॥

माढव्य । वही सखी जो चित्रविद्या में बहुत चतुर है और जिस से आप ने कहा था कि इस माधवीकुंज में बैठ कर हम मन बहलावेंगे

आती होगी और महारानी शकुन्तला का चित्त भी आप की आज्ञानुसार लावेगी ॥

दुष्यन्त । चलो प्यारी के चित्तही से मन भरजायगा कुंज की गैल बताओ ॥

माढव्य । इस गैल आओ मित्र (दोनों चले और पीछे पीछे मिश्रकेशी भी चली) यह माधवीकुंज जिस में मणिजटित पटिया बिछी है यद्यपि निर्जीव है तौ भी ऐसी दिखाई देती है मानों आप का आदर करती है आओ चल कर बैठें (दोनों लताकुंज में बैठे)

मिश्रकेशी । (आप ही आप) इस लता की ओट में बैठ कर शकुन्तला का चित्त देखूंगी और फिर उसके पति का सच्चा स्नेह जाकर उस से कहदूंगी (लता की ओट में बैठगयी)

दुष्यन्त । (ठंढी सांस भर के) हे मित्र अब मुझे शकुन्तला के प्रथम मिलाप की सब सुध आगयी है तुझ से भी तौ मैंने उसका वृत्तान्त कहा था परंतु जिस समय मैंने उसका अनादर किया तब तू मेरे पास न था तैंने भी कभी उसका नाम न लिया सो क्या तू भी उसे मेरी ही भांति भूल गया था ॥

मिश्रकेशी । (आप ही आप) राजाओं को एक घड़ी भर भी अकेला न छोड़ना चाहिये ॥

माढव्य । नहीं नहीं मैं नहीं भूला हूं परंतु जब आप सब वृत्तान्त कह चुके थे तब यह भी तौ कहा था कि यह स्नेह की कहानी हमने मन बहलाने को बनाई है और मैंने आप के कहने को अपने भोले भाव से प्रतीति कर लिया था ॥

मिश्रकेशी । (आपही आप) सत्य है ॥

दुष्यन्त । (ध्यान करके) हे माढव्य इस दुख से छुड़ाने का कुछ उपया कर ॥

माढव्य । ऐसा तुम को क्या नया दुख पड़ा है इतना अधीर होना सत्पुरुषों को योग्य नहीं है देखो पवन कैसी ही चले पर्वत को नहीं डिगा सकती है ॥

दुष्यन्त । सखा जिस समय मैंने प्यारी का त्याग किया उसकी ऐसी दशा थी कि अब उसको सुध करके मैं व्याकुल हुआ जाता हूं हाय जब उसने साथी ब्राह्मणों के पीछे चलने को मन किया ऋषि के चेले ने झिड़क कर कहा कि यहीं रह फिर भी एक बेर प्यारी ने मुझ निर्दयी की ओर आंसू भरे नेत्रों से देखा अब वही दृष्टि मेरे हृदय को विष की बुझी भाल के समान छेदती है ॥

मिश्रकेशी । (आप ही आप) देखो अपना प्रयोजन कैसा होता है कि इस का दुख सुन्ना भी मुझे सुहाता है ॥

दुष्यन्त । मित्र विचारो तो उस अप्सरा को कौन लेगया ॥

माढव्य । जो इतना ही जानता तो अब तक तुम्हारा दुख क्यों न दूर करदेता आप ही विचारो ॥

दुष्यन्त । ऐसी पतिव्रता को डिगाने की सामर्थ और किसी में न थी उसकी मा मेनका सुनी है सो मेनका ही का सखियां लेगयी होंगी॥

मिश्रकेशी । (आप ही आप) शकुन्तला का त्यागना जाग्रत अवस्था का काम नहीं है स्वप्न में हुआ होगा ॥

माढव्य । मित्र जो यही बात है तो उसके मिलने में कुछ बिलंब मत जानो ॥

दुष्यन्त । क्यों यह तुम ने कैसे जाना ॥

माढव्य । ऐसे जाना कि मा बाप अपनी बेटी को पति वियोग में बहुत काल नहीं देख सकते हैं ॥

दुष्यन्त । क्या उस समय मुझे निद्रा थी या कुछ माया थी या मेरी मति भंग हो गयी थी या मेरे कर्मों ने पलटा लिया था कुछ हो यह निश्चय है कि जब तक फिर शकुन्तला न मिलेगी मैं दुख के सागर में डूबा ही रहूंगा ॥

माढव्य । निरास न हूजिये देखो मुन्दरी ही दृष्टान्त इस बात का है कि खोयी वस्तु फिर मिलसकती है दैव इच्छा सदा बलवान है ।

दुष्यन्त । (मुन्दरी को देख कर) मुझे इस मुन्दरी का भी बड़ा सोच है यह ऐसे स्थान से गिरी है जहां फिर पहुंचना दुर्लभ है यह बड़ी

मंदभागी है क्योंकि उस कोमल उंगली में जिसके नखों की लाली चुन्नी की दमक को फीका करती थी पहुंच कर फिर गिरी॥

मिश्रकेशी। (आप ही आप) जो किसी और के हाथ पड़ती तो निःसन्देह इस मुन्दरी का भाग्य खोटा गिना जाता॥

माढव्य। कृपा करके यह तो कहो कि यह अंगूठी शकुन्तला की उंगली तक क्योंकर पहुंची॥

मिश्रकेशी। (आप ही आप) मैं भी यही सुना चाहती थी॥

दुष्यन्त। सुनो जब मैं तपोबन से अपने नगर को चलने लगा तब प्यारी ने आंखें भर के कहा कि आर्यपुत्र फिर कब सुध लोगे॥

माढव्य। भला फिर॥

दुष्यन्त। तब यह अंगूठी उसकी उंगली में पहना कर मैंने उत्तर दिया कि इसके अक्षरों को तू एक एक कर प्रतिदिन गिनियो जिस दिन पिछला अक्षर गिनती में आवै उसी दिन जान्ना कि आज रनवास से कोई लिवाने आवैगा परंतु हाय मुझ निर्दयी को यह सुध न रही॥

मिश्रकेशी। (आप ही आप) इनके वियोग और संयोग में तीन दिन का अन्तर बहुत अच्छा ठैरा था परंतु ब्रह्मा ने बिगाड़ दिया॥

माढव्य। फिर वह मुन्दरी मछली के पेट में कैसे गयी॥

दुष्यन्त। जिस समय प्यारी ने सचीतीर्थ से आचमन को जल लिया तब जल में गिरपड़ी होगी॥

माढव्य। ठीक है॥

मिश्रकेशी। (आप ही आप) आहा यही बात है कि राजा ने अधर्म्म से डरकर अपने बिवाह का संदेह किया परंतु आश्चर्य्य है कि फिर उसे मुन्दरी से क्योंकर सुध हुई॥

दुष्यन्त। मैं इस मुन्दरी को कुछ बुरा कहा चाहता हूं॥

माढव्य। (आप ही आप) राजा उन्मत्त हो गया है (प्रगट) सोई मैं भी अपनी लाठी से कहा चाहता हूं॥

दुष्यन्त। क्यों माढव्य तुम लाठी से क्यों बुरा कहा चाहते हो॥

माढव्य। इसलिये कि मेरा अंग तो टेढा है और यह ऐसी सीधी बनी है बड़ी धृष्ट लाठी है॥

दुष्यन्त। (उस की बात पर कुछ ध्यान न देकर) हे सुन्दरी तुझे क्योंकर उस हाथ से गिरते बना जिस में कोमल उंगली कमलों को लजाती थी यह तो अज्ञान है इस से क्या कहूं मैंने ज्ञानवान हो कर अपने जीवनमूल को क्यों त्यागा॥

मिश्रकेशी। (आप ही आप) मैं कहा चाहती थी सोई इस ने कही॥

माढव्य। (आप ही आप) जब तक यह सोच में है तब तक मुझे भी यहां ठैरना और भूखों मरना पड़ा॥

दुष्यन्त। हे प्यारी मैंने तुझे निष्कारण त्यागा अब फिर कब दर्शन देकर हृदय के पश्चाताप को मिटावेगी॥

(एक सखी चित्र हाथ में लिये आयी)

सखी। महाराज देखिये महारानी का चित्र यह है (चित्र सामने दिखाती हुई)

दुष्यन्त। (चित्र को देखकर) हां यही प्यारी का सुन्दर मुख है ये ही कटीले नेत्र हैं ये ही मधुर मुसक्यान भरे अधर हैं जिन की लाली बिम्बाफल को लजाती है प्रानप्यारी का मुख ऐसा बना है मानों अभी बोल उठेगी बदन की कान्ति अनेक रंगों में छुपी प्रीति के बान छोड़ती है॥

माढव्य। सत्य है यह चित्र ऐसा सुहावना लगता है मानों साक्षात् सुन्दरापा आगे खड़ा है हे मित्र मेरी आंख नख से सिख तक इस के प्रत्येक अंग की शोभा देखने को लजाती है इस चित्रदर्शन से मुझे ऐसा आनन्द होता है मानों शकुन्तला ही से बातें कर रहा हूं॥

मिश्रकेशी। (आप ही आप) अच्छा चित्र बना है इस में शकुन्तला ऐसी दिखायी देती है मानों आंखों के सामने खड़ी है॥

दुष्यन्त। फिर भी चित्र उस के रूप को कहां पाता है हां जो कुछ न्यूनता इस में रह गयी है उसको जब मैं अपने मन की कल्पना से पूरा करलेता हूं तब यह प्यारी की मोहनी मूरति की छाया देता है॥

मिश्रकेशी। (आप ही आप) जैसी प्रीति है वैसा ही पछतावा भी है॥

दुष्यन्त। (आह भर कर) हाय जब वह आप मेरे सन्मुख आई तब मैंने अनादर किया अब उसके चित्र को इतना सन्मान देता हूं मेरी

गति उस बटोही की सी है जो नदी को त्याग प्यास का मारा मृग-तृष्णा को दौड़ता है ॥

माढव्य। यहां तो इतने चित्र लिखे हैं कि मेरे ध्यान में नहीं आती महारानी शकुन्तला कौनसी है ॥

मिश्रकेशी। (आप ही आप) इस बूढ़े को शकुन्तला के सुन्दर रूप का ज्ञान नहीं है इससे जान पड़ा कि जिन आंखों की ठगारी में यह राजा बेसुध हुआ है उन की छाया इस पर कभी नहीं पड़ी ॥

दुष्यन्त। भला बतलाओ तो इन चित्रों में से तुम किस को शकुन्तला मानते हो ॥

माढव्य। (चित्रों को देख कर) सोचलूं तब बतलाऊंगा तो यही शकुन्तला है जिस का शरीर थका हुआ दिखायी देता है वस्त्र ढीले हैं बांह शिथिलाई से गिरी पड़ती हैं पसीने की बूंदें मुख पर ढलक रही हैं अलकों से फूल गिरते हैं और इस डहडहे आम के नीचे चौकी पर बैठी है यही महारानी होगी और आस पास वाली सखी सहेली होंगी ॥

दुष्यन्त। माढव्य तू बड़ा प्रवीन है परंतु देख अभी इस चित्र में कुछ कसर है देखो रंग अच्छा नहीं भरा है नहीं तो गालों पर आंसू की सी बूंद न गिरती मैंने प्यारी को बिलाप करते देखना नहीं चाहा था (चित्र बनानेवाली से) हे चतुरिका अभी यह चित्र पूरा नहीं बना है जा फिर चित्रालय से बनाने की वस्तु लेआ ॥

चतुरिका। माढव्य तुम कृपा करके चित्र लिये रहो तब तक मैं महाराज की आज्ञा बजालाऊं ॥

दुष्यन्त। नहीं तुम जाओ हमी लिये रहेंगे (राजा ने चित्र ले लिया और चतुरिका गयी)

माढव्य। (आप ही आप) तुम तो निर्मल जल की भरी नदी को छोड़ मृगतृष्णा को दौड़ते हो (प्रगट) महाराज इस में क्या कसर है ॥

मिश्रकेशी। (आप ही आप) मेरे जान तो अब राजा उन बातों को भी लिखावेगा जिनसे तपोबन में शकुन्तला के रहने का स्थान सुशोभित था ॥

दुष्यन्त। सुनो सखा मैं चाहता हूं कि इस चित्र में मालिनी नदी बनायी जाय उस की रेती में हंसों के जोड़े चुगते दिखायी दें फिर आगे बढ़कर

हिमालय पर्वत की तराई लिखी जाय जिस में हरिणों के झुंड चरते हों और एक ओर वृक्ष खड़ा हो उस वृक्ष की डालियों पर छाल के वस्त्र धूप में सूखते हों और एक हरिणी खड़ी अपनी बाईं आंख को धीरे धीरे करसालय के सींगों से खुजा रही हो ॥

माढव्य । तुम चाहो सो लिखा लो मेरे जान तो जितनी ठौर बिना लिखी रही है इस में मुझ सी कुबड़ी तपस्विनी चाहिये ॥

दुष्यन्त । (उस की बात पर ध्यान न करके) मैं यह कहना भूल ही गया कि प्यारी के चित्र में कुछ आभूषण भी लिखने चाहियें ॥

माढव्य । कैसे ॥

मिश्रकेशी । (आप ही आप) ऐसे जैसे बनयुवतियों के होते हैं ॥

दुष्यन्त । देखो चित्र बनानेवाली प्यारी के कान पर शिरस का गुच्छा रखना और कपोलों पर फूलों का झुप्पा लटकाना भूल गयी है और छाती पर शरच्चंद्र की किरण के समान कोमल कमल की डांड़ियों का हार भी बनाना रह गया है ॥

माढव्य । मित्र यह रानी अपने आधे मुख को पंकज सी हथेली से छुपाये चकृत सी क्यों हो रही है आहा मैं जान गया एक भौंरा मुख को कमल जान बैठा चाहता है ॥

दुष्यन्त । इस धृष्ट भौंरे को दूर करो ॥

माढव्य । महाराज सब धृष्टों को दण्ड देने की सामर्थ्य आप ही को है ॥

दुष्यन्त । अरे भौंरे तू तो फूली लताओं का पाहुना है तू यहां अनादर होने क्यों आया देख वहां जा जहां तेरी भौंरी भूखी प्यासी फूल पै बैठी बाट हेर रही है बिना तेरे रस नहीं लेती ॥

मिश्रकेशी । (आप ही आप) यह बचन है तो निरादर का परंतु अच्छा कहा ॥

माढव्य । महाराज भौंरे की ढिठाई तो प्रसिद्ध है ॥

दुष्यन्त । (रिस होकर) रे भौंरा जो तू मेरी प्यारी के होठों को छूगा तो कमल की उदर की बंधि में डाला जायगा नहीं मानेगा ॥

माढव्य । जब तुम ने ऐसा कड़ा दण्ड कहा तो क्यों न मानेगा (हंस कर आप ही आप) यह तो सिड़ी होगया है इस के साथ रहने से मेरी भी दशा इसी की सी हुई जाती है ॥

दुष्यन्त । अरे मैं आज्ञा देचुका फिर भी तू नहीं हटता ॥

मिश्रकेशी । (आप ही आप) प्रीति की अधिकाई में चतुर मनुष्य भी मूर्ख हो जाते हैं ॥

माढव्य । सखा यह चित्र का भौंरा है ॥

मिश्रकेशी । (आप ही आप) आहा इस का इतना बेसुध होना यह चित्रविद्या की निपुणता का गुण है ॥

दुष्यन्त । हे निर्दयी मैं तो प्रानप्यारी के दर्शन का सुख लेता था तू ने क्यों सुध दिलायी कि यह चित्र है (रोता हुआ)

मिश्रकेशी । (आप ही आप) बियोगियों की यही दशा होती है अब इस को सब ओर कंटक ही दिखायी देते हैं ॥

दुष्यन्त । अब मैं इस भारी व्यथा को कैसे सहूं जो चाहूं कि प्यारी से स्वप्न में मिलूं तो नींद नहीं आती और चित्र में देखकर मन बहलाऊं तो आंसू नहीं देखने देते ॥

मिश्रकेशी । (आप ही आप) शकुन्तला के त्यागने का कलंक राजा के सिर से अब इस बिलाप ने धो दिया ॥

(चतुरिका फिर आयी)

चतुरिका । महाराज जब मैं रंगों का डिब्बा लेकर चली तभी ॥

दुष्यन्त । (शीघ्रता से) तब क्या हुआ ॥

चतुरिका । तभी महारानी वसुमती पिंगला को साथ लिये आयीं और मेरे हाथ से डिब्बा छीनकर कहा कि डिब्बा ला इसे मैं ही महाराज को चलकर दूंगी ॥

माढव्य । भला हुआ जो तू बच आयी ॥

चतुरिका । रानी का वस्त्र एक कांटे के बृक्ष से अटका गया उसे छुड़ाने में पिंगला लगी तब तक मैं निकल आयी ॥

दुष्यन्त । हे सखा माढव्य मैं रानी वसुमती का मान बहुत रखता हूं इससे गर्वित हो गयी है अब चित्र छुपाने का उपाय कर ॥

माढव्य । (आप ही आप) तुम्हीं छुपालो तो अच्छा है (यह कहता चित्र लेकर उठा) (प्रगट) जो तुम मुझे रनवास की ऊंची भीत पर चढ़ा दो तो इस चित्र को ऐसा छुपाऊं कि कोई न देख सके (बाहर गया)

मिश्रकेशी । (आप ही आप) आहा राजा अपने धर्म को कैसा पहचानता है कि यद्यपि दूसरी पर आसक्त है तो भी अपने अगले बचन का निर्वाह करता है ॥

(एक द्वारपाल पत्र हाथ में लिये आया)

द्वारपाल । महाराज की जय हो ॥

दुष्यन्त । द्वारपाल तुम ने इस समय महारानी वसुमती को तो नहीं देखा है ॥

द्वारपाल । हां महाराज मुझे मिली तो थीं परंतु मेरे हाथ में चिट्ठी देखकर उलटी लौट गयीं ॥

दुष्यन्त । रानी समय को पहचानती है और मेरे राज काज में विघ्न डालना नहीं चाहती ॥

द्वारपाल । महाराज मंत्री ने यह बिनती की है कि आज मुझ को रुपया सम्हारने के काम से अवकाश न था इसलिये केवल एक ही पुरकार्य्य किया है सो बहुत सावधानी से इस पत्र में लिख दिया है कि आप कृपा करके देखलें ॥

दुष्यन्त । पत्र मुझे दो (पत्र लेकर पढ़ने लगा) महाराज के चरणों में यह निवेदन है कि धनवृद्ध नाम एक बड़ा साहूकार था उसका बेटा मारा गया और वह भी समुद्र में डूब गया कोई पुत्र उसके नहीं है और धन बहुत छोड़ा है महाराज की आज्ञा हो तो वह धन राजभंडार में रक्खा जाय (शोक से) आह निपुत्री होना मनुष्य को कैसी बुरी बात है परंतु जिसके इतना धन था उसके स्त्री भी बहुत होंगी इसलिये पहले यह पूछ लेना चाहिये कि उन स्त्रियों में से कोई गर्भवती है या नहीं ॥

द्वारपाल । मैंने सुना है कि उसके एक स्त्री साकेतक सेठ की बेटी के इन दिनों गर्भाधान के संस्कार हुए हैं ॥

दुष्यन्त । गर्भ के बालक का यद्यपि जन्म अभी नहीं हुआ है तो भी अपने पिता के धन का वही अधिकारी होगा जाओ मंत्री से हमारी यह आज्ञा कह दे ॥

द्वारपाल । जो आज्ञा (बाहर गया)

दुष्यन्त । ठैरो तो ॥

द्वारपाल । (फिर आकर) आया ॥

दुष्यन्त । चाहे साहूकार के सन्तान हो चाहे न हो उसका धन राज में लगाना न चाहिये जाओ यह ढंढोरा नगर में कर दो कि मेरी प्रजा में जिस किसी को किसी प्यारे बान्धव का वियोग हो वह दुष्यन्त को अपना धर्म का बान्धव समझे ॥

द्वारपाल । यही ढंढोरा हो जायगा (बाहर गया)

(दुष्यन्त सोच में बैठा हुआ)

(द्वारपाल फिर आया)

द्वारपाल । महाराज आप की आज्ञा की नगर में बड़ी बड़ाई हुई ॥

दुष्यन्त । (गहरी सांस भर कर) जब कोई बड़ा मनुष्य बिना सन्तान मरता है तो उसकी सम्पत्ति यों ही बिराने घर जाती है यही वृत्तान्त किसी दिन पुरुवंशियों के संचय किये धन का होना है ॥

द्वारपाल । ईश्वर ऐसा अमंगल न करै (बाहर गया)

दुष्यन्त । धिक्कार है मुझे कि मैंने प्राप्त हुए सुख को लात मारी ॥

मिश्रकेशी । (आप ही आप) निश्चय इस ने यह अपनी निन्दा अपने जी से की होगी ॥

दुष्यन्त । हाय मैं बड़ा अपराधी हूं कि मैंने अपनी धर्म्मपत्नी को जो किसी दिन पुरुवंश की प्रतिष्ठा होती ऐसे त्याग दिया जैसे कोई अपनी बोयी धरती को फल आने के समय छोड़ दे ॥

मिश्रकेशी । (आपही आप) सब ने तो नहीं छोड़ दिया क्या आश्चर्य्य है कि फिर तुझे मिले ॥

चतुरिका । (आप ही आप) मंत्री निर्दयी ने उत्पात का भरा पत्र भेज राजा की क्या दशा कर दी है देखो आंसुओं से बहा जाता है ॥

दुष्यन्त । हाय मेरे पित्रों को नित्य यह खटका लगा रहता होगा कि जब दुष्यन्त संसार से उठ जायगा तब कौन हमको पिण्ड देगा मेरे पीछे कौन इस वंश के श्राद्धादिक करेगा हाय अब तक तो मेरे कुल के निपुत्री पितरों को मेरे हाथ से वस्त्र का निचोड़ा जल तो भी मिलजाता था फिर यह भी न मिलेगा ॥

मिश्रकेशी । (आप ही आप) राजा की आंखों पर इस समय मोह का ऐसा अंचल पड़ा है मानों सुन्दर दीपक की ज्योति में अंधेरा सूझे ॥

चतुरिका । महाराज इतना शोक न कीजिये अभी आप की तरुण अवस्था है आप की रानियों के आप ही से यशस्वी पुत्र होंगे और आप के पित्रों को दुख न मिलने देंगे ॥

दुष्यन्त । (दुख से) पुरु का वंश अब तक तो फला फूला और शुद्ध रहा परंतु अब मुझे प्राप्त होकर समाप्त हुआ जैसे सरस्वती नदी ऐसे देश में जो उसकी पवित्र धारा के बहने योग्य न था जाकर लोप हुई है ॥

(मूर्छित हो गया)

चतुरिका । (आप ही आप) महाराज सावधान हूजिये ॥

मिश्रकेशी । (आप ही आप) मैं चलकर संभालूं नहीं आप ही चैतन्य हो जायगा मैंने देवजननी अप्सरा को शकुन्तला से यह कहते सुना था कि जैसे देवता अपना यज्ञभाग पाकर प्रसन्न हो जाते हैं तूभी अपने पति के स्नेह से शीघ्र ही आनंद पावेगी ॥

(उठकर चली गयी)

(नेपथ्य में क्या ब्राह्मण की रक्षा करनेवाला कोई नहीं रहा ॥

दुष्यन्त । (सावधान होकर और कान लगाकर) आहा यह कौन माढव्य सा दुहाई देरहा है कोई है कोई है ॥

चतुरिका । हो न हो रानी की पिंगला इत्यादि सहेलियों ने उस को चित्र हाथ में लिये आ पकड़ा है ॥

दुष्यन्त । चतुरिका तू जा मेरी ओर से रानी को ललकार कर कहदे कि अपनी सखियों को क्यों नहीं बरजती है ॥

चतुरिका। जो आज्ञा महाराज की (बाहर गयी) (फिर नेपथ्य में) मैं ब्राह्मण हूं मेरे प्राण मत ले॥

दुष्यन्त। निश्चय यह कोई ब्राह्मण आपत्ति में फ़सा है है रे कोई यहां॥

(बूढ़ा चोबदार आया)

चोबदार। महाराज की क्या आज्ञा है॥

दुष्यन्त। देखो तो माढव्य का गला किसने पकड़ा है॥

चोबदार। अभी समाचार लाता हूं॥

(बाहर गया और फिर कांपता हुआ आया)

दुष्यन्त। कहो पर्बतायन क्या है॥

चोबदार। महाराज बड़ा उत्पात है॥

दुष्यन्त। तू कांपता क्यों है बुढ़ापे में मनुष्य की क्या गति हो जाती है डर से बूढ़े मनुष्य का शरीर ऐसे थरथराता है जैसे पवन लगने से पीपल का बृक्ष॥

चोबदार। अपने सखा को छुड़ाओ॥

दुष्यन्त। छुड़ाऊं काहे में से॥

चोबदार। आपत्ति में से॥

दुष्यन्त। क्या कहते हो॥

चोबदार। वह भीति जिस से आकाश के चारों कोने दिखाई देते हैं और बादलों के मिले रहने से मेघछन्द कहलाती है॥

दुष्यन्त। सो क्या॥

चोबदार। उस भीति की मुडेल से जहां नीलग्रीव कपोत का भी पहुंचना कठिन है एक पिशाच ऐसा आया कि किसी की दृष्टि न पड़ा और आप के सखा को लेजाकर उसी भीति पर रख दिया॥

दुष्यन्त। (तुरन्त उठकर) हैं मेरे रनवास में भी पिशाच रहते हैं सत्य है राजा को अनेक विघ्न होते हैं राजा उन उत्पातों को भी नहीं जानता है जो उसी के अधर्म से प्रति दिन और प्रति छिन राजभवन में हुआ करते हैं फिर वह क्योंकर जान सकता है कि मेरी प्रजा सुमार्ग में चलती है या कुमार्ग में और जब राजा के कर्म आपही निरंकुश हों तो वह प्रजा के कर्म्मों को किस भांति सुधार सकता है॥

(नेपथ्य) में चलियो चलियो ॥

दुष्यन्त । (सुन्ता और दौड़ता हुआ) डरो मत मित्र कुछ भय नहीं है (नेपथ्य में) भय क्यों नहीं है भूत तो मेरा कंठ पकड़े कलेजा पेंठे डालता है ॥

दुष्यन्त । (चारों ओर देखता हुआ) हे रे कोई मेरा धनुष लावे ॥

(एक द्वारपाल राजा का धनुष बाण लेकर आया)

द्वारपाल । महाराज धनुष यह है (दुष्यन्त ने धनुष बाण ले लिया) (नेपथ्य में, तेरे कंठ के लोहू का प्यासा मैं तुझे ऐसे पछाड़ूंगा जैसे सिंह पशु को मारता है अब बतला दुखियों की रक्षा के लिये धनुष धारण करनेवाला दुष्यन्त कहां है जो तुझे बचावे ॥

दुष्यन्त । (क्रोध से) यह पिशाच तो मुझे भी चिनोती देता है अरे नीच खड़ा रह मैं आया अब तेरी मृत्यु समीप पहुंची (धनुष चढ़ाकर) पर्बतायन छत्त की गैल बताओ ॥

द्वारपाल । गैल यह है महाराज ॥

(सब तुरंत बाहर गये)

स्थान एक बड़ी चौड़ी छत्त

(दुष्यन्त आया)

दुष्यन्त । (चारों ओर देख कर) हैं यहां तो कोई नहीं है ॥

(नेपथ्य में) बचाओ कोई मुझे बचाओ महाराज मैं तो तुम्हें देखता हूं तुम्हीं मुझे नहीं देख सकते हो इस समय मैं ऐसा हो रहा हूं जैसे बिलाव का ग्रसा चूहा ॥

दुष्यन्त । मुझे तू नहीं सूझता है तो क्या हुआ जिस अन्तरध्यान विद्या के बल से बेरी ने तुझे लोप कर रक्खा है उसको मिटा कर मेरा बान बेरी को देखलेगा माढव्य सावधान रहो और तू अरे पिशाच मेरे शरणागत को न मार सकेगा देख अब मैं यह बान चढ़ाता हूं यह तुझे बेधकर ब्राह्मण को ऐसे बचालेगा जैसे हंस पानी में से दूध को निकाल लेता है ॥

(धनुष ताना)

(मातलि और माढव्य आये)

मातलि। महाराज इन बाणों के लिये आप के मित्र इन्द्र ने असुर बता दिये हैं उन्हीं पर धनुष खैंचो मित्रों पर स्नेह की दृष्टि चाहिये॥

दुष्यन्त। (चकित होकर अस्त्र रखलिया) आहा इन्द्र के सारथी तुम भले आये॥

माढव्य। हैं यह तो बधिक की भांति मुझे मारे डालता था आप इस का आदर करते हो॥

मातलि। (मुसक्या कर) महाराज मैं इन्द्र का संदेसा लेकर आया हूं सो सुन लो॥

दुष्यन्त। कहो मैं कान लगाकर सुनता हूं॥

मातलि। कालनेमि के वंश में दानवों का ऐसा एक गण प्रबल हुआ है कि उसका जीतना इन्द्र को कठिन हो रहा है॥

दुष्यन्त। यह तो मैंने आगे ही नारद से सुन लिया है॥

मातलि। ऐसे शत्रुवंश को जब सौ यज्ञ करनेवाला देवनायक न जीत सका तब जैसे सूर्य्य रैन का अंधकार मिटाने को असमर्थ होकर चन्द्रमा से सहायता लेता है तैसे ही तुमको अपना मित्र जान बुलाया है सो महाराज इस रथपर चढ़ो और धनुष लेकर विजय को चलो

दुष्यन्त। देवराज ने मेरे ऊपर बड़ी कृपा की है इस से मैं सनाथ हुआ परंतु तुम यह कहो कि मेरे सखा माढव्य को तुम ने इतना क्यों सताया॥

मातलि। आप को बहुत उदास देखकर चैतन्य करने के लिये मैंने रोम दिलाया था क्योंकि जैसे काठ गिरने से अग्नि का तेज बढ़ता है और छेड़ने से सर्प फण उठाता है ऐसे ही तेजस्वी पुरुष क्षोह दिलाने से पराक्रम दिखाते हैं॥

दुष्यन्त। (माढव्य से होले) हे सखा देवपति की आज्ञा उल्लंघन योग्य नहीं है इस से तुम जाकर यह समाचार मंत्री को सुना दो और कहो कि जब तक मेरा धनुष दूसरे कार्य में प्रवृत्त रहे तब तक अपनी बुद्धि से प्रजा की रक्षा करे॥

माढव्य । यह तो कहदूंगा परंतु मेरा गला घोंटे बिना मातलि अपना संदेसा भुगता देता तो इसका क्या बिगड़ता ॥

मातलि । रथपर चढ़ो महाराज (दुष्यन्त रथपर चढ़ा और मातलि ने रथ हांका)

अंक ७

(इन्द्र का कार्य करके दुष्यन्त और मातलि रथपर चढ़े आकाश से उतरते हुए)

दुष्यन्त । हे मातलि मैंने इन्द्र की आज्ञा पाली सो यह बात तो कुछ ऐसी बड़ी न थी जिस के लिये मुझे इतनी प्रतिष्ठा मिली ॥

मातलि । (हंसकर) दोनों को यही संकोच है आप ने इन्द्र के साथ इतना बड़ा उपकार किया है तो भी तुच्छ ही मानते ऐसे ही आप के करतब के सामने देवराज लज्जित हो रहा है ॥

दुष्यन्त । ऐसा मत कहो इन्द्र ने मेरा बड़ा सत्कार किया कि मुझे अपनी आधी गद्दी पर देवताओं के देखते जगह दी और अपने पुत्र जयन्त के सामने जिसे इस बड़ाई के मिलने की अभिलाषा थी मेरे हृदय पर हरिचन्दन लगा कर गले में मंदार की माला डाली ॥

मातलि । हे राजा इन्द्र से आप किस किस सत्कार के योग्य नहीं हो स्वर्ग को दोही ने दैत्यों के कंटक से छुड़ाया है एक तो आगे नरसिंह के नखों ने और अब आप के तीक्ष्ण बाणों ने ॥

दुष्यन्त । हम को यह यश उन्हीं देवनायक की कृपा से मिला है क्योंकि संसार में जब कोई बड़ा कार्य्य आज्ञाकारियों से बन पड़ता है तो स्वामियों की बड़ाई का पुण्य समझा जाता है क्या अरुण की सामर्थ्य थी कि रात्रि के अंधकार को दूर करता कदाचित सूर्य्य अपने आगे उस को रथपर आसन न देता ॥

मातलि । आप को ऐसा ही कहना उचित है (रथ को हौले हौले चलाया) हे राजा अपने स्वर्ग तक प्राप्त हुए यश की गुरुता देखो जिन रंगों से सुरसुन्दरी अंगराग करती हैं उन्हीं से देवता आप के चरितों को कल्पलता के पत्तों पर स्वर्ग के गाने योग्य गीतों में लिख रहे हैं ।

दुष्यन्त। (नम्रता से) हे मातलि दानवों को जीतने के उत्साह में इधर से जाते हुए मैंने इस शुभ स्थान को भली भांति नहीं देखा था अब तुम कहो इस समय पवन के कौन से मार्ग में चलते हैं॥

मातलि। यह वही मार्ग है जिस में आकाशगंगा के तटपर सूर्य्य चलता है और सब तारागण घूमते हैं यह मार्ग परिवह पवन का है जो नक्षत्र ग्रहों का आधार है और यही मार्ग विष्णु का दूसरा पैंड़ था जब कि हरि ने अहंकारी बलि को छला था॥

दुष्यन्त। यह शोभा देख मेरे रोम रोम प्रसन्न हो गये हैं (पहियों को देख कर) अब हम मेघों के मार्ग में चलते हैं॥

मातलि। यह आप ने क्योंकर जाना॥

दुष्यन्त। रथ ही कहे देता है कि अब हम जल भरे बादलों में चलते हैं क्योंकि पहिये भीगे हैं और इन्द्र के घोड़ों के अंग बिजली से चमकते हैं मैं देखता हूं कि कोलाहल करते हुए चातक ऊंचे ऊंचे पहाड़ों की चोटियों से अपने घोंसले छोड़ छोड़ नीचे उतरते हैं॥

मातलि। ठीक है अभी एक क्षण में आप अपने राज्य में पहुंचते हो॥

दुष्यन्त। (नीचे को देखकर) स्वर्ग के घोड़ों के बेग से उतरने में यहां समस्त अचरज सा दिखायी देता है अभी पृथ्वी यहां से इतनी दूर है कि पहाड़ के शिखर और घाटों में कुछ अन्तर नहीं जान पड़ता वृक्ष पत्रहीन से दृष्टि आते हैं नदियां श्वेत रेखा के समान दीखती हैं भूमण्डल ऐसा सूझता है मानों किसी बली ने ऊपर को गेंद बना कर उछाल दिया है॥

मातलि। (पृथ्वी को आदर से देखकर) हे राजा देखो मनुष्यलोक कैसा वैभवमान दिखायी देता है॥

दुष्यन्त। मातलि बतलाओ तो यह कौनसा पहाड़ है जो पूर्व और पश्चिम समुद्रों के बीच में सोने का सा कटिबंध दिखायी देता है और संध्या के मेघ के समान सुवर्ण की सी धारा बरसता है॥

मातलि। महाराज यह गंधर्वों का हेमकूट नाम पर्वत है सृष्टि में इससे उत्तम कोई स्थान तपस्या सिद्ध करने के लिये नहीं है इसी में मरीचि

का पुत्र ब्रह्मा का पौत्र देवदानवों का पिता कश्यप अपनी स्त्री अदिति समेत तपस्या कर रहा है॥

दुष्यन्त। (श्रद्धा से) कल्याण प्राप्त करने का यह अवसर चूकने योग्य नहीं है आओ उन को प्रणाम कर के चलेंगे॥

मातलि। बहुत अच्छा यह बिचार आप का अति उत्तम है अब हम पृथ्वी पर आ गये॥

दुष्यन्त। (आश्चर्य्य से) रथ के पहियों का कुछ भी आहट न हुआ न कुछ धूलि उड़ी न उतरने में थकावट हुई॥

मातलि। हे राजा आप के और इन्द्र के रथ में इतना ही अन्तर है॥

दुष्यन्त। कश्यप का आश्रम कहां है॥

मातलि। (हाथ से दिखला कर) जहां वह योगी अचल ठूंठ की भांति सूरज की ओर ध्यान लगाये बैठा है उससे थोड़ी दूर पर कश्यप का स्थान है राजा आप देखो इस तपस्वी के आधे शरीर पर बांबी चढ़गयी है और जनेऊ की ठौर सांप की केंचुली पड़ी है कंठ के आस पास सूखी लता लपट रही हैं लटों में पंछियों ने घोंसले बना लिये हैं॥

दुष्यन्त। ऐसे उग्र तपस्वी को नमस्कार है॥

मातलि। (घोड़ों की रास खैंच कर) बस यहां से आगे रथ न जाना चाहिये अब हम उस स्थान पर आगये हैं जहां स्वर्ग की नदी ऋषि के बन को सींचती है॥

दुष्यन्त। यहां इन्द्रलोक से भी अधिक सुख है इस समय मेरा ध्यान ऐसा बंध रहा है मानों अमृत के कुण्ड में न्हाता हूं॥

मातलि। (रथ को ठैरा कर) महाराज अब उतर लीजिये॥

दुष्यन्त। (हर्ष सहित रथ से उतर कर) तुम रथ को छोड़ कर कैसे चलोगे॥

मातलि। इस का मैंने यत्न कर दिया है आप से आप यहां खड़ा रहेगा चलिये मैं भी आप के साथ चलूंगा महाराज इस मार्ग आओ और बड़े महात्मा तपस्वियों के स्थान देखो॥

दुष्यन्त। जैसा आश्चर्य्य मुझे इन तपस्वियों के देखने से होता है वैसा ही इन के पवित्र आश्रम के दर्शन से सुख मिलता है सत्य है शुद्ध

जीवों को यही योग्य है कि कल्पवृक्षों के बन में पवन खाकर प्राण रक्खें जिन नदियों का जल कनक कमल के पराग से पीला दिखायी देता है उन में स्नान संध्या करें जिन शिलाओं के टुकड़ों से रत्न बनते हैं उन पर बैठ कर ध्यान लगावें अपनी इन्द्रियों को ऐसा बस में रक्खें कि कदाचित कोई बड़ी रूपवती अप्सरा भी आकर घेरे तो मन न डिगे जिन पदार्थों के लिये बड़े बड़े मुनीश्वर तप करते हैं सो इस आश्रम में प्राप्त हैं॥

मातलि। सत्पुरुषों की अभिलाषा सदा उत्तम से उत्तम वस्तु पाने के लिये बढ़ती रहती है (एक ओर को फिर कर) कहो वृद्धसांकल्य इस समय महात्मा कश्यप ऋषि क्या कर रहे हैं क्या दक्ष की बेटी ने जो पतिव्रत धर्म पूछा था उन से सम्भाषण करते हैं॥

दुष्यन्त। तो अभी कुछ ठैरना चाहिये॥

मातलि। (राजा की ओर देख कर) आप इस अशोक वृक्ष की छाया में बिश्राम करिये तब तक मैं आप के आने का संदेसा अवसर देख कर इन्द्र के पिता से कह आऊं॥

दुष्यन्त। बहुत अच्छा (मातलि गया और दुष्यन्त की दाहिनी भुजा फरकी)

दुष्यन्त। हे भुजा अब तू बृथा शकुन क्यों दिखाती है मेरे पहले सब सुख मिटकर केवल दुख रह गये हैं (नेपथ्य में) अरे ऐसी चपलता क्यों करता है क्यों तू अपनी बानि नहीं छोड़ता॥

दुष्यन्त। (कान लगा कर) हैं ऐसे स्थान में ताड़ना का क्या काम है यह सीख किसको हो रही है (जिधर बोल सुनायी दिया उधर देख के और आश्चर्य्य करके) आहा यह किसका पराक्रमी बालक है जिसे दो तपस्विनी रोकती हैं तोभी खेल में नाहर के भूखे बच्चे को खैंचे लाता है॥

(सिंह के बच्चे को घसीटता हुआ एक बालक आया और उसके साथ दो तपस्विनी आयीं)

बालक। अरे बछड़े तू अपना मुख खोल मैं तेरे दांत गिनूंगा॥

एक तपस्विनी । ए हठीले बालक तू इस बन के पशुओं को क्यों सताता है हम तो इन को बाल बच्चों के समान रखती हैं तेरा खेल में भी साहस नहीं जाता इसी से तेरा नाम ऋषि ने सर्वदमन रक्खा है ॥

दुष्यन्त । (आप ही आप) आहा क्या कारण है कि मेरा स्नेह इस लड़के में पुत्र का सा होता आता है हो न हो यह हेतु है कि मैं पुत्रहीन हूं ॥

दू० तपस्विनी । जो तू इस बच्चे को छोड़ न देगा तो सिंहनी तुझ पर दौड़ेगी ॥

बालक । (मुसक्या कर) ठीक है सिंहनी का मुझे ऐसा ही डर है (रोस में आकर होठ काटने लगा)

दुष्यन्त । (आप ही आप चकित सा होकर) यह बालक किसी बड़े बली का वीर्य्य है इस का रूप उस अग्नि के समान है जो सूखा काठ मिलने से अग्निप्रज्वलित होती है ॥

प० तपस्विनी । हे बालक सिंह के बच्चे को छोड़दे मैं तुझे उससे भी सुन्दर खिलौना दूंगी ॥

बालक । पहले खिलौना देदो लाओ कहां है (हाथ पसार कर)

दुष्यन्त । (लड़के के हाथ को देख कर आप ही आप) आहा इस के हाथ में तो चक्रवर्ती के लक्षण हैं उंगलियों पर कैसा अद्भुत जाल है और हथेली की शोभा प्रातः कमल को भी लज्जित कर रही है ॥

दू० तपस्विनी । हे सखी सुव्रता यह बातों से न मानेगा जा तू कुटी में एक मिट्टी का मोर ऋषिकुमार शंकर के खेलने का रक्खा है सो लेआ ॥

प० तपस्विनी । मैं अभी लिये आती हूं (गयी)

बालक । तब तक मैं इसी सिंह के बच्चे से खेलूंगा ॥

दू० तपस्विनी । (बालक की ओर देख कर और मुसक्या कर) तेरी बलैया लूं अब तू इसे छोड़ दे ॥

दुष्यन्त । (आप ही आप) इस लड़के के खिलाने को मेरा जी कैसा चाहता है (आह भर कर) धन्य हैं वे मनुष्य जो अपने पुत्रों को कनियों लेकर उनके अंग की धूल से अपनी गोद मैली करते हैं और

पुत्रों के मुख निष्कारण हंसी से खुल कर उज्जल दांतों की शोभा दिखाते और तुतुले बचन बोलते हैं ॥

दू० तपस्विनी। (उंगली उठा कर) क्योंरे ढीठ तू मेरी बात कान नहीं धरता है (इधर उधर देख कर) कोई ऋषि यहां है (दुष्यन्त को देखा) अहो परदेसी आओ कृपा करके इस बली बालक के हाथ से सिंह के बच्चे को छुड़ाओ ॥

दुष्यन्त। अच्छा (लड़के के पास जाकर और हंस कर) हे ऋषिकुमार तुमने तपोबन के विरुद्ध यह आचरण क्यों सीखा है जिससे तुम्हारे कुल को लाज आती है यह तो काले सांपही का धर्म है कि मलय-गिरि से लिपट कर उसे दूषित करे (लड़के ने सिंह को छोड़ दिया)

दू० तपस्विनी। हे बटोही मैंने तुम्हारा बहुत गुन माना परंतु जिस को तुम ऋषिकुमार कहते हो सो ऋषि का बालक नहीं है ॥

दुष्यन्त। सत्य है इस के काम ऐसैं हो साहस के हैं यह ऋषिपुत्र नहीं जान पड़ता परंतु मैंने तपोबन में इस का बास देख ऋषिपुत्र जाना था (लड़के का हाथ हाथ में लेकर आप ही आप) आहा जब इसका हाथ छूने से मुझे इतना सुख हुआ है तो जिस बड़भागी का यह बेटा है उसको कितना हर्ष देता होगा ॥

दू० तपस्विनी। (दोनों की ओर देख कर) बड़े अचंभे की बात है ॥

दुष्यन्त। तुमको क्यों अचंभा हुआ ॥

दू० तपस्विनी। यह अचंभा है कि इस बालक का तुम्हारा कुछ सम्बन्ध नहीं है तो भी तुम्हारी इसकी उनहार बहुत मिलती है और दूसरे यह अचंभे की बात है कि यह तुमको आगे से नहीं जानता था और अभी इसकी बुद्धि भी बालक है तो भी तुम्हारी बात इस ने क्यों तुरंत मान ली ॥

दुष्यन्त। (लड़के को गोद में उठा कर) हे तपस्विनी जो यह ऋषिपुत्र नहीं है तो किस का वंश है ॥

दू० तपस्विनी। यह पुरुवंशी है ॥

दुष्यन्त। (आप ही आप) इसी से मेरी इसकी उनहार मिलती है (इसको गोद से उतार कर)(प्रगट) पुरुवंशियों में यह रीति तो

निश्चय है कि युवा अवस्था भर रनवास में रह कर पृथ्वी की रक्षा और पालन करते हैं फिर जब बृद्धापन आता है बानप्रस्थ आश्रम लेकर जितेन्द्री तपस्वियों के आश्रम में बृक्षों के नीचे कुटी बनाकर रहते हैं परंतु मुझे आश्चर्य्य यह है कि इस बालक के देवता के से चरित्र हैं यह मनुष्य का वीर्य्य क्योंकर होगा ॥

दू० तपस्विनी । हे परदेसी तेरा सब संदेह तब मिटजायगा जब तू जानलेगा कि इस बालक की मा एक अप्सरा की बेटी है ॥

दुष्यन्त । (आप ही आप) यह तो बड़े आनन्द की बात सुनायी इससे कुछ और आशा बढ़ी (प्रगट) इस की माता का पाणिग्रहण किस राजर्षि ने किया है ॥

दू०तपस्विनी । जिस राजा ने अपनी बिवाहिता स्त्री को बिना अपराध छोड़ दिया है उसका नाम मैं न लूंगी ॥

दुष्यन्त । (आप ही आप) यह कथा तो मुझी पर लगती है भला अब इस बालक की मा का नाम पूछूं (सोच कर) परंतु सत्पुरुषों की रीति नहीं है कि परायी स्त्री का वृत्तान्त पूछें ॥

(पहली तपस्विनी खिलौना लेकर आयी)

प० तपस्विनी । हे सर्वदमन देख यह कैसा शकुन्तलावण्य है ॥

बालक । (बड़े चाउ से देख कर) कहां है शकुन्तला मेरी माता ॥

दो० तपस्विनी । (हंसती हुई) यहां तेरी माता नहीं है हमने दुअर्थी बात कही थी अर्थात् सुन्दर पक्षी दिखाया था ॥

दुष्यन्त । (आप ही आप) इसकी मा मेरी ही प्यारी शकुन्तला है या इस नाम की कोई दूसरी स्त्री है यह वृत्तान्त मुझे ऐसा व्याकुल करता है जैसे मृगतृष्णा प्यासे हरिण को निरास करती है ॥

बालक । जो यह मोर चले फिरैगा और उड़ेगा तो मानूंगा नहीं तो नहीं ॥

प० तपस्विनी । (घबरा कर) आहा बालक की बांह से रक्षाबंधन कहां गया (खिलौना लेलिया)

दुष्यन्त । घबराओ मत जब यह नाहर से खेल रहा था तब इसके हाथ से गंडा गिर गया था सो वह पड़ा है मैं उठा कर तुम्हें दिये देता हूं (उठाना चाहा)

दो० तपस्विनी । हैं हैं इस गंडे के। छूना मत ॥

प० तपस्विनी । हाय इस ने तो उठाही लिया (दोनों आपस में अचंभे से देखने लगीं)

दुष्यन्त । गंडा यह ले। परंतु यह कहो कि तुमने मुझे इस के छूने से रोका क्यों था ॥

दू० तपस्विनी । इसलिये रोका था कि इस यंत्र में बड़ी शक्ति है जिस समय इस बालक का जात कर्म हुआ था तब महात्मा मरीच के पुत्र कश्यप ने यह गंडा दिया था इस में यह गुन है कि कदाचित धरती पर गिरपड़े तो इस बालक के मा बाप के। छोड़ दूसरा कोई न उठा सके॥

दुष्यन्त । और जो कोई उठा ले तो क्या हो ॥

प० तपस्विनी । तो यह तुरन्त सांप बन कर उस को डसे ॥

दुष्यन्त । तुम ने ऐसा कभी होते देखा है ॥

दो० तपस्विनी । अनेक बार ॥

दुष्यन्त । (प्रसन्न होकर) तो अब मेरा मनोरथ पूरा हुआ (लड़के को गोद में ले लिया)

दू० तपस्विनी । आओ सुव्रता ये सुख के समाचार चल के शकुन्तला को सुनावें वह बहुत दिनों से वियोग के कठिन नेम कर रही है ॥

(दोनों बाहर गयीं)

बालक । छोड़ो छोड़ो मैं अपनी माता के पास जाऊंगा ॥

दुष्यन्त । हे पुत्र तू मेरे संग चलकर अपनी माता को सुख दीजो ॥

बालक । मेरा पिता तो दुष्यन्त है तुम दुष्यन्त नहीं हो ॥

दुष्यन्त । तेरा यह विवाद भी मुझे प्रतीति कराता है ॥

(वियोग के वस्त्र धारण किये और जटे हुए बालों की बेणी पीठ पर डाले शकुन्तला आयी)

शकुन्तला । (आप ही आप) मैं सुन तो चुकी हूं कि बालक के गंडे की दिव्यसामर्थ्य का गुन प्रगट हुआ परंतु अपने भाग्य का कुछ भरोसा नहीं है हां इतनी आशा है कि कहीं मिश्रकेशो का कहना सच्चा हो गया हो ॥

दुष्यन्त। (हर्ष और शोक दोनों से) क्या जोगिनि के भेष में यह प्यारी शकुन्तला है जिसका मुख बिरह के नियमों ने पीला कर दिया है और वस्त्र मलीन पहने जटा कंधे पर डाले मुझ निर्दयी का वियोग सहती है॥

शकुन्तला। (राजा की ओर देख कर और संशय कर के) यह क्या मेरा ही प्राणपति है जो वियोग की आंच से ऐसा कुंभला रहा है जो मेरा पति नहीं है तो कौन है जिस ने बालक का हाथ पकड़ कर अपना कहा और मुझे दूषण लगाया वह कौन है जिस को बालक के गंडे ने बाधा न करी॥

बालक। (दौड़ता हुआ शकुन्तला के पास जाकर) माता यह किसी के कहने से मुझे अपना पुत्र बताता है॥

दुष्यन्त। हे प्यारी मैंने तेरे साथ निठुराई तो की परंतु परिणाम अच्छा हुआ कि तैंने मुझे पहचान लिया जो हुआ सो हुआ अब उस बात को भूल जा॥

शकुन्तला। (आप ही आप) अरे मन तू धीरज धर अब मुझे भरोसा हुआ कि मेरे भाग्य ने ईर्षा छोड़ी (प्रगट) हे आर्यपुत्र मेरी तो यही अभिलाषा है कि तुम प्रसन्न रहो॥

दुष्यन्त। प्यारी भ्रम में मुझे तेरी सुध न रही थी सो आज दैव का बड़ा अनुग्रह है कि तू चन्द्रमुखी फिर मेरे सन्मुख आयी जैसे ग्रहण के अंत में रोहणी फिर अपने प्यारे कलानिधि से मिलती है॥

शकुन्तला। महाराज की (इतना कहते ही गदगद बानी होकर आंसू गिरने लगे)

दुष्यन्त। हे सुन्दरी मैंने जानलिया तू जय शब्द कहा चाहती थी सो आंसुओं ने रोक लिया परंतु मेरी जय होने में अब कुछ सन्देह नहीं है क्योंकि आज तेरे मुखचन्द्र का दर्शन मिल गया॥

बालक। माता यह पुरुष कौन है॥

शकुन्तला। बेटा मेरे भाग्य से पूछ॥

(फिर रो उठी)

दुष्यन्त। हे सुन्दरी अब तू अपने मन से मेरे अपगुनों का ध्यान बिसरादे जिस समय मैंने तेरा अनादर किया मेरा चित्त किसी बड़े भ्रम में होगा,

जब तमोगुण प्रबल होता है बहुधा यही गति मनुष्य की हो जाती है जैसे अंधे के गले में हार डालो और वह उसको सर्प समझ कर फेंक दे ॥

(यह कहता हुआ पैरों में गिर पड़ा)

शकुन्तला । उठो प्राणपति उठो मेरे सुख में बहुत दिन विघ्न रहा परंतु तुम्हारा हित अब तक मुझ में बना है यह बड़े सुख का मूल है (राजा उठा) मुझ दुखिया की सुध कैसे आप को आयी सो कहो ॥

दुष्यन्त । जब बिरह बिथा का कांटा मेरे कलेजे से निकल जायगा तब सब वृत्तान्त कहूंगा अब तू मुझे अपने सुन्दर पलकों में आंसू पोंछने दे जिससे मेरा यह पछतावा दूर हो कि उस दिन मैंने भ्रम में आकर तेरे आंसू देखे अनदेखे किये थे (आंसू पोंछने को हाथ बढ़ाया)

शकुन्तला । (अपने आंसू पोंछ कर और राजा की उंगली में अंगूठी देखकर) आहा यह वही विसासिन अंगूठी है ॥

दुष्यन्त । इसी के मिलते मुझे तेरी सुध आयी ॥

शकुन्तला । तो यह बड़े गुण भरी है कि इससे फिर आप को गयी प्रतीति मुझ पर आयी ॥

दुष्यन्त । हे प्यारी अब तू इसे पहन जैसे ऋतु के चिन्ह के लिये पृथ्वी फूल धारण करती है ॥

शकुन्तला । मुझे इस का विश्वास नहीं रहा है आप ही पहनो ॥

(मातलि आया)

मातलि । महाराज धन्य है यह दिन कि आपने फिर अपनी धर्मपत्नी पायी और पुत्र का मुख देखा ॥

दुष्यन्त । मित्रोंही की दया से मेरी अभिलाषा पूरी हुई है परंतु यह तो कहो कि इस वृत्तान्त को इन्द्र जान्ता था या नहीं ॥

मातलि । (हंस कर) देवता क्या नहीं जानते हैं अब आओ महात्मा कश्यप आप को दर्शन देंगे ॥

दुष्यन्त । प्यारी चलो और सर्वदमन की भी उंगली थामे चलो महात्मा का दर्शन करआवें ॥

शकुन्तला । आप के संग बड़ों के सन्मुख जाने में मुझे लज्जा आती है ॥

दुष्यन्त। ऐसे शुभ समय में एक संग चलना बहुत उत्तम है ऐसा सभी करते आये हैं चलो विलम्ब मत करो॥

(सब आगे को बढ़े)

(स्थान सिंहासन पर बैठे हुए कश्यप और अदिति बातें करते हुए दिखायी दिये)

कश्यप। (राजा की ओर देख कर) हे दक्षसुता तेरे पुत्र की सेना का अग्रगामी मृत्युलोक का राजा दुष्यन्त यही है इसी के धनुष का प्रताप है कि इन्द्र का वज्र केवल शोभामात्र रह गया है॥

अदिति। इस के लक्षण बड़े राजाओं के से दिखायी देते है॥

मातलि। (दुष्यन्त से) हे राजा द्वादश आदित्यों के माता पिता आप की ओर प्यार की दृष्टि से ऐसे देख रहे हैं जैसे कोई अपने पुत्र को देखता है आप निकट चलो॥

दुष्यन्त। क्या ये ही दक्ष की पुत्री और मरीचि के पुत्र हैं ये ही ब्रह्मा के पौत्र पौत्री हैं जिन को उस ने सृष्टि की आदि में जन्म दिया था और बारह आदित्यों के पित्र कहलाते हैं क्या ये वे ही हैं जिन से त्रिभुवनधनी इन्द्र और बावन अवतार उत्पन्न हुए॥

मातलि। हां येही हैं (दुष्यन्त समेत साष्टांग दण्डवत की) हे महात्माओ राजा दुष्यन्त जो अभी तुम्हारे पुत्र बासव की आज्ञा पूरी करके आया है प्रणाम करता है॥

कश्यप। अखण्ड राज्य रहे॥

अदिति। तुम रन में अजित हो॥

शकुन्तला। महाराज मैं भी आप के चरणों में बालक समेत प्रणाम करती हूं॥

कश्यप। हे पुत्री तेरा स्वामी इन्द्र के समान और पुत्र जयन्त के तुल्य हो इससे उत्तम और क्या आशीर्वाद दूं कि तू पुलोमन की पुत्री सची के सदृश हो॥

अदिति। हे पुत्री तू सदा सौभाग्यवती रहे और यह बालक दीर्घायु होकर तुम दोनों को सुख दे और कुल का दीपक हो आओ बिराजो॥

(सब बैठ गये)

कश्यप । (एक एक की ओर देख कर दुष्यन्त से) तुम बड़े बड़भागी हो ऐसी पतिव्रता स्त्री ऐसा आज्ञाकारी पुत्र और ऐसे तुम आप यह संयोग ऐसा हुआ है मानों श्रद्धा और वित्त और विधि तीनों इकट्ठे हुए ॥

दुष्यन्त । हे महर्षि आप का अनुग्रह बड़ा अपूर्व है कि दर्शन पीछे हुए मनोरथ पहले ही होगया कारण और कार्य्य का सदा यह सम्बन्ध है कि पहले फूल होता है तब फल लगता है पहले मेघ आते हैं तब जल बरसता है परंतु आप की कृपा ऐसी है कि पहलेही फल प्राप्त करा देती है ॥

मातलि । महाराज बड़ों की कृपा का यही प्रभाव है ॥

दुष्यन्त । हे मरीचिकुलभूषण आप की दासी शकुन्तला का बिवाह मेरे साथ गंधर्व रीति से हुआ था फिर कुछ काल बीते अपने मायके के लोगों के साथ यह मेरे पास आयी उस समय मुझे ऐसी सुध भूलगयी कि इसे पहचान न सका और अपनी पत्नी का त्याग करके आप के कुल का अपराधी हुआ फिर जब इस अंगूठी को देखा तब मुझे प्राणप्यारी की सुधि आयी और जाना कि आप के सगोत्री कन्व की बेटी से मेरा ब्याह हुआ था यह वृत्तान्त हे महात्मा बड़े आश्चर्य का है मेरी बुद्धि उस मनुष्य कीसी हो गयी जो अपने सामने जाते हुए हाथी को न पहचाने कि यह क्या पशु है फिर उस के खोज देख कर समझे कि हाथी था ॥

कश्यप । जो अपराध बिना जाने हुआ उस का सोच अपने मन से दूर करो और मैं कहता हूं सो सुनो ॥

दुष्यन्त । मैं एकाग्रचित्त होकर सुन्ता हूं आप कहैं ॥

कश्यप । जब अप्सरातीर्थ में तुम्हारे परित्याग से शकुन्तला ब्याकुल हुई तब मेनका उसे लेकर अदिति के पास आयी मैंने उसी समय अपनी योगशक्ति से जानलिया था कि तुम ने अपनी धर्मपत्नी को दुर्वासा के शापबस होकर छोड़ा और इस शाप की अवधि मुन्दरी के दर्शन ही तक है ॥

दुष्यन्त । (आप ही आप) तो मैं अपराध से बचा ॥

शकुन्तला । (आप ही आप) धन्य हैं मेरे भाग्य कि स्वामी ने मुझे जान बूझ कर नहीं त्यागा था शाप से ऐसा हुआ और अब बड़ी शुभ घड़ी है कि राजा ने फिर मुझे पहचान लिया जिस समय यह शाप हुआ मैं अपने आपे में न हूंगी मेरी सखियों ने सुना होगा परंतु स्नेह के मारे मुझ से न कहा तौ भी चलते समय इतना कह दिया कि जो कहीं तेरा पति तुझे भूलजाय तो यह अंगूठी दिखा दीजो ॥

कश्यप । (शकुन्तला की ओर देखकर) हे पुत्री अब तैंने सब वृत्तान्त जान लिया अपने पति का अपराध मत समझ उस ने शाप के बस तेरा अनादर किया था अब वह भ्रम मिट गया और तू रानी हुई जैसे दर्पण जब तक धुंधला रहे तब तक उस में प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता फिर निरमल होते ही मूरति ज्यों की त्यों दिखायी देती है ॥

दुष्यन्त । महात्मा सत्य है उस समय मेरी ऐसी ही दशा थी ॥

कश्यप । बेटा कहो तुम ने अपने इस पुत्र का भी जिसके जातकर्म मैंने आप वेदविधि से किये हैं कुछ लाड़ प्यार किया कि नहीं ॥

दुष्यन्त । महात्मा यह तो मेरे वंश की प्रतिष्ठा है ॥

कश्यप । यह भी जानलो कि यह बालक अपनी बीरता से चक्रवर्ती होगा और सातों द्वीप में अखंड राज्य करेगा जैसे इस ने यहां बालपन में बन के सिंह इत्यादि दुष्ट पशुओं को दण्ड देकर सर्वदमन नाम पाया है ऐसे ही युवा में प्रजा को भरणपोषण करके भरत कहलावेगा ॥

दुष्यन्त । जिस बालक को आप से महात्मा ने शिक्षा दी है वह निश्चय सब बड़ाइयों के योग्य होगा ॥

अदिति । अब शकुन्तला ने फिर अच्छे दिन देखे इसलिये कन्वजी को भी यह बृत्तान्त सुनाना चाहिये और इसकी माता मेनका यहीं है वह तो सब जानती ही है ॥

शकुन्तला । (आप ही आप) इस भगवती ने तो मेरे ही मन की कही ॥

कश्यप । अपने तप के बल से कन्वजी सब वृत्तान्त जानते होंगे परंतु यह मंगल की बात है उनको सुनानी चाहिये ॥

दुष्यन्त । इसी से मुनि ने मुझ पर क्रोध न किया ॥

कश्यप । (सोच कर) समाचार हमो कन्व को पहुंचावेंगे कोई है ॥

(एक चेला आया)

चेला । महात्मा क्या आज्ञा है ॥

कश्यप । हे गालव तुम अभी आकाशमार्ग होकर कन्व के पास जाओ और मेरी ओर से यह शुभ समाचार कहदो कि दुर्वासा का शाप मिटने से आज दुष्यन्त ने पुत्रवती शकुन्तला को पहचान कर अंगीकार कर लिया ॥

चेला । जो आज्ञा (गया)

कश्यप । अब पुत्र तुम अपने स्त्री बालक समेत इन्द्र के रथ पर चढ़ कर आनन्द से अपनी राजधानी को सिधारो ॥

दुष्यन्त । जो आज्ञा ॥

कश्यप । हम आशीर्बाद देते हैं कि इन्द्र तुम्हारे राज्य में अच्छी वर्षा करे और तुम यज्ञ करके इन्द्र को अनुकूल रक्खो इस भांति तुम्हारा परस्पर उपकार होने से दोनों लोक के वासी युगानयुग सुख पावेंगे ॥

दुष्यन्त । हे महात्मा जहां तक हो सकेगा मैं इस सुख के निमित्त सब उपाय करूंगा ॥

कश्यप । अब और क्या आशीर्बाद दें ॥

दुष्यन्त । जो आप ने कृपाकी है इस से अधिक और आशीर्बाद क्या होगा और कदाचित आप प्रसन्न ही हुए हो तो यह आशीर्बाद दो कि राजाओं की बुद्धि प्रजा का सुख बढ़ाने में प्रवृत्ति रहे और बेदपाठी सरस्वती के पूजन में चित्त लगावें और नीलकंठ लोहितजटा स्वयंभू सदाशिव मुझे इस संसार के आवागमन से छुड़ावें ॥

कश्यप । तथास्तु ॥

(सब बाहर गये)

(समाप्तम्)

॥ सभाविलास ॥

॥ अथ दृष्टान्त ॥

भाव सरस समझत सबै भले लगे इह भाय ।
जैसे औसर की कही बानी सुनत सुहाय ॥
नीकी पै फीकी लगे बिन औसर की बात ।
जैसे बरनत युद्ध में रस सिंगार न सुहात ॥
फीकी पै नीकी लगे कहिये समैं बिचार ।
सब के मन हर्षित करै जों बिवाह में गार ॥
जाही तें कछु पाइये करिये ताकी आस ।
रीते सरवर पै गये कैसें बुझत पियास ॥
स्वाति बूंद है सघन में चातक मरत पियास ।
जो जाही को ह्वै रहे सो तिहिं पूरे आस ॥
भले बुरे सब एक से जो लों बोलत नांहि ।
जान परत हैं काक पिक ऋतु बसंत के मांहि ॥
मधुर बचन तें जात मिट उत्तम जन अभिमान ।
तनक सीतजल सों मिटै जैसें दूध उफान ॥
सबै सहायक सबल के कोइ न निबल सहाय ।
पवन जगावत आग कों दीपहिं देत बुझाय ॥
कछु बसाय नहिं सबलसों करै निबलसों जोर ।
चलै न अचल उखार तरु डारत पवन झकोर ॥
जो जाही सों रच रह्यो तिहिं ताही सों काम ।
जैसे किरवा आक को कहा करै बस आम ॥
प्रकृति मिले मन मिलत है अनमिल तें न मिलाय ।
दूध दही तें जमत है कांजी तें फटजाय ॥

परघर कबहुं न जाइये गए घटत है जोति ।
रविमण्डल में जात ससि छीन कला छवि होति ॥
ब्रह्म बनाए बनरहे ते फिर और बने न ।
कान कहत नहि बैन ज्यों जीभ सुनत नहि बैन ॥
मूरख गुन समझे नहीं तो न गुनी में चूक ।
कहा भयो दिनको विभो देखी जो न उलूक ॥
मूढ तहांहीं मानिये जहां न पंडित होय ।
दीपक को रवि के उदै बात न बूझै कोय ॥
निपट अबुध समझै कहा बुधजन बचन बिलास ।
कबहूं भेक न जानहीं अमल कमल की बास ॥
सांच झूठ निरनय करै नीति निपुन जो होय ।
राजहंस बिन को करै छीर नीर को दोय ॥
दोखहिं को उमहे गहै गुन न गहै खल लोक ।
पिये रुधिर पय ना पिये लगी पयोधर जोंक ॥
कारज धीरे होतु है काहे होत अधीर ।
समय पाय तरवर फरै केतक सींचो नीर ॥
क्यों कीजे ऐसो जतन जाते काज न होय ।
परबत पै खोदै कुआ कैसे निकसै तोय ॥
सुधरी बिगरै बेगही बिगरी फिर सुधरै न ।
दूध फटे कांजी परै सो फिर दूध बनै न ॥
छोटे नर तैं रहत हैं सोभायुत सिरताज ।
निर्मल राखे चांदनी जैसे पायंदाज ॥
सहज रसीलो होय सो करै अहित पर हेत ।
जैसें पोड़ित कीजिये ईख तऊ रस देत ॥
कहा करै कोऊ जतन प्रकृति और की और ।
विख मारै ज्यावे सुधा उपजै एकहि ठौर ॥
डरै न काहू दुष्टसों जाहि प्रेम की बान ।
भौंर न छांड़ै केतकी तीखे कण्टक जान ॥
धन बाढ़े मन बढ़ गयो नाहिन मन घट होय ।
ज्यों जल सङ्ग बढ़े जलज जल घट घटै न सोय ॥

सबतें लघु है मांगवो या में फेर न सार ।
बलपै जाचत ही भए बावन तन करतार ॥
सब इक से होत न कहूं होत सबन में फेर ।
कपरी खादी धाफतो लोह तवा शमशेर ॥
जैसे की सेवा करै तैसी आसा पूर ।
रत्नाकर सेवै रतन सर सेवै शालूर ॥
होत सुसङ्गति सहज सुख दुख कुसङ्ग के थान ।
गन्धी और लुहार की बैठो देख दुकान ॥
ठौर छुटेतें मीत हू ह्वै अमीत सतरात ।
रवि जल उखरे कमल कों जारत गारत जात ॥
जात गुनी जात न तहां आडंबरजुत सोय ।
पहुंचे चङ्ग अकास लौं जो गुनसंयुत होय ॥
गुनवारो सम्पत लहै लहै न गुन बिन कोय ।
काढ़ै नीर पताल तें जो गुनयुत घट होय ॥
अरि छोटो गनिये नहीं जातें होत बिगार ।
तृन समूह कों छिनक में जारत तनक अंगार ॥
पण्डित जनको श्रम मरम जानत जे मतिधीर ।
कबहूं बांझ न जान ही तन प्रसूत की पीर ॥
बीर पराक्रम ना करे तासों डरत न कोय ।
बालक हूं को चित्त को बाघ खिलौना होय ॥
नृप प्रताप तें देस में रहे दुष्ट नहिं कोय ।
प्रगटै तेज दिनेस को तहां तिमिर नहिं होय ॥
कारज ताही को सरै करै जो समय निहार ।
कबहुं न हारै खेल जो खेलै दाव बिचार ॥
कोऊ दूर न कर सके उलटे बिधि के अंक ।
उदधि पिता तउ चन्द को धोय न सक्यो कलंक ॥
गाहक सबै सपूत के सारै काज सपूत ।
सब को ढंपन होतु है जैसे बन को सूत ॥
करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान ।
रसरी आवत जात तें सिल पर परत निशान ॥

को सुख को दुख देत है देत कर्म झकझोर ।
उरझै सुरझै आप ही ध्वजा पवन के जोर ॥
भलो करत लागे बिलंब बिलंब न बुरे बिचार ।
भवन बनावत दिन लगै ढाहत लगै न बार ॥
सोई अपनौ आपनौ रहै निरन्तर साथ ।
होत परायौ आपनौ शस्त्र पराए हाथ ॥
का रस में का रोस में अरिसों जिन पतियाय ।
जैसे सीतल तप्त जल डारत अग्नि बुझाय ॥
अन्तर अंगुरी चार कौ सांच झूठ में होय ।
सब मानै देखी कही सुनी न मानै कोय ॥
होय भले कौ सुत बुरौ भलौ बुरे के होय ।
दीपक सों काजल प्रगट कमल कीच तें जोय ॥
होय भले चाकरन तें भलौ धनी कौ काम ।
जों अङ्गद हनुमान तें सीता पाई राम ॥
सुख सज्जन के मिलन कों दुर्जन मिले जनाय ।
जानै ऊख मिठास कों जब मुख नीम चबाय ॥
जाहि मिले सुख होतु है तिहिं बिछुरे दुख होय ।
सूर उदै फूलै कमल ता बिन सकुचै सोय ॥
झूठे हू करिये जतन कारज बिगरै नाहिं ।
कपट पुरुख धनखेत पर देखत मृग फिरि जाहिं ॥
कारज सोई सुधरि है जो करिये समभाय ।
अति बरसे बरसे बिना जों करि सन कुम्हिलाय ॥
रहै प्रजा धन यत्नसों जहं बांकी तरवार ।
सो फल कोउ न लेसके जहां कटीली डार ॥
पण्डित और बनिता लता शोभित आश्रय पाय ।
है मानिक बहु मोल को हेम जटित छबिछाय ॥
अपनी प्रभुता कों सबै बोलत झूठ बनाय ।
वेश्या बरख घटावही जोगी बरख बढ़ाय ॥
कहूं कहूं गुन दोष तें उपजत दुःख शरीर ।
मधुरी बानी बोल के परत पींजरा कीर ॥

भले बुरे निबहैं सबै महत पुरुष के संग ।
चन्द सर्प जल अग्नि ये बसत शंभु के अंग ॥
बिना कहेहू सतपुरुष परको पूरें आस ।
कौन कहत है सूर कौं घरघर करत प्रकास ॥
कछु कहि नीच न छेड़िये भलो न वाको सङ्ग ।
पाथर डारे कीच में उछिर बिगारे अङ्ग ॥
मीठी मीठी वस्तु नहीं मीठी जाकी चाह ।
अमला मिसरी छांड़ि के आफू खात सराह ॥
खाय न खरचै शुद्ध मन चोर सबै ले जाय ।
पीछे जों मधुमच्छिका हाथ मलै पछिताय ॥
उत्तम विद्या लीजिये जदपि नीच पै होय ।
पस्यो अपावन ठौर में कंचन तजत न कोय ॥
जानबूझ अजुगत करै तासों कहा बसाय ।
जागत ही सोवत रहै ताकों कहा जगाय ॥
सजन बचावे कष्ट तें रहै निरंतर साथ ।
नैन सहाई जों पलक देह सहाई हाथ ॥
अरि के कर में दीजिये अवसर को अधिकार ।
जों जों द्रव्य लुटायहै त्यों त्यों जस बिस्तार ॥
बुद्धिमान गंभीर को संगत लागे नांहि ।
जों चन्दन ढिग अहि रहत बिख न होय तिहि मांहि ॥
सज्जन कों दुख हू दिये दुरजन पूरे आस ।
जैसे चन्दन कों घिसे सुन्दर देत सुबास ॥
सज्जन चित कबहु न धरत दुरजन जन के बोल ।
पाहन मारे आम कों तउ फल देत अमोल ॥
बिरले नर पण्डित गुनी बिरले बूझनहार ।
दुख खंडन बिरले पुरुष ते उत्तम संसार ॥
जे करतार बड़े किये मग पग धरहिं बिचार ।
दुरजन हू सों मिल चलैं बोलैं रोस निवार ॥
जाहि बड़ाई चाहिये तजे न उत्तम साथ ।
जों पलास संग पान के पहुंचे राजा हाथ ॥

बचन पारखो होहु तुम पहले आप न भाख ।
अनपूछे नहि भाखियै यही सीख जिय राख ॥
मुख स्रवन दृग नासिका सब ही कै इकठौर ।
कहबौ सुनबौ देखबौ चतुरन कौ कछु और ॥
जो तू चाहे अधिक रस सीख ईख की लेय ।
जो तोसों अनरस करै ताहि अधिक रस देय ॥
नर की अरु नल नीर की गति एकै करि जोय ।
जों जों नीचो ह्वै चलै त्यों त्यों ऊंचो होय ॥

॥ अथ पखाने ॥

कैसें निवहै निबल जन करि सबलन सों बैर ।
जैसे बस सागर बिखे करत मगर सों बैर ॥
अपनी पहुंच बिचार कै करतब करियै दौर ।
तेते पांव पसारियै जेती लांबी सौर ॥
पिशुन छल्यो नर सुजन सों करत बिस्वास न चूकि ।
जैसे दाध्यौ दूध को पीवति छाछहिं फूकि ॥
फेर न ह्वै है कपट सों जो कीजै व्यौपार ।
जैसे हांडी काठ की चढ़ै न दूजी बार ॥
करियै सुख को होत दुख यह कहो कौन सयान ।
वा सोने को जारियै जासों टूटे कान ॥ ॥
भले बुरे जहां एकसे तहां न बसियै जाय ।
ज्यौं अन्यायपुर में बिकै खर गुर एकै भाय ॥
अति अनीति लहियै न धन जो प्यारो मन होय ।
पाए सोने की छुरी पेट न मारै कोय ॥
मूरख कों पोथी दई बांचन कों गुनगाथ ।
जैसे निरमल आरसी दई अंध के हाथ ॥
अति हठ मत कर हठ बढ़ै बात न करिहै कोय ।
जों जों भींजै कामरी तों तों भारी होय ॥
लालच हू ऐसो भलो जासों पूजै आस ।
चाटेहू कहुं ओस के बूझत काहु की प्यास ॥

जैसो गुन दीनों दई तैसो रूप निबन्ध ।
ये दोऊ कहं पाइये सोनों और सुगन्ध ॥
प्रेम निबाहन कठिन है समझ कीजियो कोय ।
भांग भखन है सुगम पै लहर कठिन हो होय ॥
एक बस्तु गुन होत है भिन्न प्रकृति के भाय ।
भटा एक कों पित करै करै एक कों बाय ॥
बिन स्वारथ कैसे सहै कोऊ करुए बैन ।
लात खाय पुचकारिये होय दुधारू धेन ॥
करै बुराई सुख चहै कैसे पावै कोय ।
रोपै पेड़ बबूल को आम कहां तें होय ॥
होय बुराई तें बुरो यह कीनै निरधार ।
खाड खनैगो और कों ताकों कूप तयार ॥
कन कन जोरे मन जुरै खातें निबरै सोय ।
बून्द बून्द सों घट भरै टपकत बीतै तोय ॥
श्रमही सों सब मिलत है बिन श्रम मिलैन काहि ।
सीधी अंगुरी घी जम्यों क्यों हूं निकरै नाहि ॥
होत न कारज मो बिना यहै कहै सो अयान ।
जहां न कुक्कुट शब्द तहं होत न कहा बिहान ॥
यही बात सबहीं कहैं राजा करै सो न्याव ।
जों चौपर के खेल में पासो परै सो दाव ॥
परको अवगुन देखिये अपनो दृष्टि न होय ।
करै उजेरो दीप पै तरै अंधेरो होय ॥
अपनी अपनी ठौर पर सब को लागै दाव ।
जल में गाड़ी नाव पर थल गाड़ी पर नाव ॥
सुख दिखाय दुख दीजिये खल सों लरिये काहि ।
जो गुर दीनेहीं मरत क्यों बिख दीजे ताहि ॥
अन पूछेही जानिये मूढ़ देख मन मांहि ।
छलकै ओछे नीर घट पूरे छलकै नांहि ॥
बिनसत बार न लागही ओछे जन की प्रीति ।
अंबर डंबर सांझ के जों बारू की भीति ॥

कुल सपूत जन्यो परत लखि सब लच्छन गात ।
होनहार बिरवान के होत चीकने पात ॥
जो धनवंत सुदेय कछु देह कहां धन हीन ।
कहा निचोरे नग्न जन न्हान सरोवर कीन ॥
होत निबाह न आपनो लीने फिरै समाज ।
चूहा बिल न समात है पूंछ बांधिये छाज ॥
बिना प्रयोजन भूलिहू ठटिये नाहीं ठाट ।
जानो नहिं जा नगर कों ताकी पूछ न बाट ॥
इंगित औ आकारतें जान लेत जो भेट ।
तासों बात दुरत नहीं जों टाईसों पेट ॥
आप कहे नाहिन करे ताको है यह हेत ।
आप न जावे सासरे औरन कों सिख देत ॥
जो कहिये सो कीजिये पहले कर निरधार ।
पानी पी घर पूछनो नाहीं भलो बिचार ॥
पाछे कारज कीजिये पहले यतन बिचार ।
बड़े कहत हैं बांधिये पानी पहले बार ॥
ठीक किये बिन और की बात सांच मत थपे ।
होत अंधेरी रैन में परी जेवरी सर्प ॥
ठौर देख के हूजिये कुटिल सरलगति आप ।
बाहर टेढ़ो फ़िरत है बांबी सूधो सांप ॥
दोऊ चाहें मिनल कों तो मिलाप निरधार ।
कबहु नाहिन बाजि है एक हाथतें तार ॥
आप अकारज आपनो करत कुसंगत साथ ।
पाय कुल्हारा देत है मूरख अपने हाथ ॥
ताही को करिये यतन रहिये जाकी आर ।
कौन बैठ के डार पर काटै सोई डार ॥
परछत नके देखिये कहा बरने कोउ ताहि ।
कर कंकन कों आरसी को देखत है चाहि ॥
आये आदर ना करै जात रहे पछताय ।
आयो नाग न पूजिये बांबी पूजन जाय ॥

निबल सबल के पच्छतें सबलनसों अनखात ।
देत हिमायत को गधो गराको कै लात ॥
बहुत द्रव्य संचय जहां चोर राज भय होय ।
कासे ऊपर बीजरी परत कहत सब कोय ॥
ओछे नर के पेट में रहै न मोटी बात ।
आधसेर के पात्र में कैसे सेर समात ॥

॥ अथ कुण्डलिया ॥

बैरी बंधुआ बानियां ज्वारी चोर लबार ।
बिभचारी रोगी ऋणी नगर नारि को यार ॥
नगर नारि को यार भूलि परतीत न कीजै ।
सौसो सोंहें खाय चित्त एको नहिं दीजै ॥
कह गिरधर कबिराय घरै आवै अनघेरी ।
हित की कहै बनाय जानियै पूरो बैरी ॥
बिना बिचारे जो करै सो पाछे पछिताय ।
काम बिगारै आपनो जग में होत हंसाय ॥
जग में होत हंसाय चित्त में चैन न पावै ।
खान पान सनमान राग रंग मनहिं न आवै ॥
कह० दुःख कछु टरत न टारे ।
खटकत है जिय मांहिं कियो जो बिना बिचारे ॥
बीती ताहि बिसार दे आगे की सुध ले ।
जो बनिआवे सहज में ताही में चित दे ॥
ताही में चित दे बात जोई बनिआवे ।
दुरजन हंसे न कोय चित्त में खेद न पावे ॥
कह० यहै कर मन परतीती ।
आगे को सुख होय समुझ बीती सो बीती ॥
सांई ये न बिरुद्धये गुरु पंडित कबिराय ।
बेटा बनिता पौरिया यज्ञ करावनहार ॥
यज्ञ करावनहार राज मंत्री जो होई ।
बिप्र परोसी बेद आप को तपे रसोई ॥

कह० यहै कैसी समझाई ।
इन तेरहतें तरह दिये बनिआवै स.ई ॥
सांई अपने चित्त की भूल न कहियै कोय ।
तब लग मन में राखियै जब लग कारज होय ॥
जब लग कारज होय भूल कबहूं नहिं कहियै ।
दुरजन ताता होय आप सीरे ह्वै रहियै ॥
कह० बात चतुरन के तांई ।
करतूती कहि देति आप कहियै नहिं सांई ॥
चिंता ज्वाल शरीर बन दावा लगि लगि जाय ।
प्रगट धुंआं नहिं देखियै उर अंतर धुंधुवाय ॥
उर अंतर धुंधुवाय जरै जौं कांचकी भट्टी ।
जरगौ लोहू मास रहगई हाड़ की टट्टी ॥
कह० सुनै हो मेरे मिन्ता ।
वे नर कैसें जियैं जाहि तन व्यापै चिन्ता ॥
राजा के दरबार में जैयै समयौ पाय ।
सांई तहां न बैठियै जहं कोउ देय उठाय ॥
जहं कोउ देय उठाय बोल अनबोले रहियै ।
हंसियै न हरखाय बात पूछेतें कहियै ॥
कह० समय सों कीजे काजा ।
अति आतुर नहि होय बहुरि अनखैहै राजा ॥
कृतघन कबहुन मानियै कोटि करौ जो कोय ।
सरबस आगै राखियै तउ न अपनौ होय ॥
तउ न अपनौ होय भले की भली न मानै ।
काम काढ़ि चुप रहै फेर तिहिं नाहिं पिछानै ॥
कह० रहत नितही निर्भय मन ।
मित्र शत्रु सब एक दाम के लालच कृतघन ॥
जाको धन धरती लई ताहि न लीजे संग ।
जो संग राखेही बनै तौ करि राख अपंग ॥
तौ करि राख अपंग फेरफार कैसो न कीजे ।
कपट रूप बतराय ताहिको मन हर लीजे ॥

कह० खुटक जेहे नहि ताको ।
कोटि दिलासा देउ लई धन घरती जाको ॥
सांई अपने भ्रात कों कबहुं न दीजे त्रास ।
पलकदूर नहिं कीजिये सदा राखिये पास ॥
सदा राखिये पास त्रास कबहूं नहिं दीजे ।
त्रास दियो लंकेस तासु की गति सुनि लीजे ॥
कह० रामसों मिलियो आई ।
पाय बिभीखन राज लंकपति बाजो सांई ॥
सांई बेटा बाप के बिगरे भयो अकाज ।
हिरनाकुस अरु कंस को गयो दुहुन को राज ॥
गयो दुहुन को राज बाप बेटा के बिगरे ।
दुसमन दावादार भये महि मंडल सिगरे ॥
कह० उन्हें काहू न बताई ।
पिता पुत्र की रार लाभ एको नहिं सांई ॥
सांई नदी समुद्र कों मिली बड़ापन जानि ।
जाति नास भयो मिलत हो मान महत की हानि ॥
मान महत की हानि कहो अब कैसी कीजे ।
जल खारी ह्वै गयो ताहि कहु कैसे पीजे ॥
कह० कच्छ मच्छन सकुचाई ।
बड़ो फजीहतचार भयो नदियन को सांई ॥
सांई सन अरु दुष्ट जन इन को यही सुभाव ।
खाल खिंचावे आपनी पर बंधन के दाव ॥
पर बंधन के दाव खाल आपनी खिंचवावें ।
मूंड काटि के कूटिये तऊ बाज न आवें ॥
कह० जर अपनी कटवाई ।
जल में गिरि सर गये तऊ छोड़ी न खुटाई ॥
सांई समो न चूकिये यथा शक्ति उनमान ।
को जाने को आयहे तेरी पौरि प्रमान ॥
तेरी पौरि प्रमान समों असमों तकि आवे ।
ताकों तू मन खोलि अंकभरि कंठ लगावे ॥

कह० सबै या में सधि आई ।
सीतल जल फल फूल समौ जिन चूकौ सांई ॥
सांई हरि ऐसी करी बल के द्वारे जाय ।
पहले हाथ पसार कै बहुरि पसारे पाय ॥
बहुरि पसारे पाय मतौ राजा न बतायौ ।
भूमि सभै हरिलई बांधि पाताल पठायौ ॥
कह० राज राजनि के ताईं ।
छल बल करि पर भूमि लेत को तृपत्यौ सांई ॥
सांई पुर पाला पर्‌यौ आसमानतें आय ।
पंगुहि आंधे छोरि कै पुरजन चले पराय ॥
पुरजन चले पराय अंध इक मतौ बिचार्‌यौ ।
पंगु कंध कै लियौ दृष्टि वाकी पग धार्‌यौ ॥
कह० मते ह्वै चलियौ सांई ।
बिना मते कौ राज गयौ रावन की नांई ॥
हीरा अपनी खान कौं मन ही मन पछिताय ।
गुन कीमत जानी नहीं तहां बिकान्यौ आय ॥
तहां बिकान्यौ आय छेद करहा सों बांध्यौ ।
मीठौ लगै न मास लोन बिन फूहर रांध्यौ ॥
कह० धीरं कैसैं कै धीरा ।
गुन कीमत घटगई यहै कहि रोयौ हीरा ॥
सांई अगर उजार में जरत महा पछिताय ।
गुन गाहक कोउ नहीं जाहि सुबास सुहाय ॥
जाहि सुबास सुहाय सुतौ बन में कोउ नाहीं ।
कै गीदड़ कै हिरन सुतौ कछु जानत नाहीं ॥
कह० बड़ौ दुख यहै गुसांई ।
अगर आक की राख भई मिलि एकै सांई ॥
सांई हंस न आवही बिन सरवर जल पास ।
निर्फल तरवर तें डरै पंछी पथिक उदास ॥
पंछी पथिक उदास छांह बिश्राम न पावें ।
जहां न प्रफुलित कमल भ्रमर तहां भूल न आवे ॥

कह० जहां यह बूझ बड़ाई
तहां न करिये सांझ प्रात ही चलिये सांई ॥
हंसा उड़ि दिस कों चले सरवर मीत जुहार
हम तुम कबहू भेटि हैं संदेसन व्योहार ॥
संदेसन व्योहार भस्यो पूरी जल रहियो
जीव जंतु चिरजियो सदा उत्तम फल लहियो ॥
कह० केल की रही न मंसा
दे असीस उड़िचले देस अपने को हंसा ॥
हंसा इहं रहियै नहीं सरवर गयो सुखाय
जो रहियै तौ सीस पर बगुला दैहैं पाय ॥
बगुला दैहैं पाय कीच कारे ह्वै जैहौ
लोक हंसाई होय कहा कछु इज्जत पैहौ ॥
कह० मोंहि इक यही है संसा
याहू तें कछु घाट और होय है हंसा ॥
सांई तेली तिलनसों कियो नेह निर्वाहि
छांटि फटकि उज्जल करे दई बड़ाई ताहि ॥
दई बड़ाई ताहि पंच यह सिगरे जानी
दे कोल्हू में पेरि करी है इकतर घानी ॥
कह० माया की यही बड़ाई
माया सब तें भली मान मति मेरी सांई ॥
सांई सुवा प्रवीन अति बानी बदति विचित्र
रूपवंत गुन आगरो राम नाम सों चित्त ॥
राम नाम सों चित्त और देव न अनुराग्यो
जहां जहां तू गयो तहां तू नींको लाग्यो ॥
कह० सुआ चूक्यो चतुराई
सेमल सेयो बृथा विसास करि भूल्यहु सांई ॥
धोखे दाड़िम के सुआ गयो नारियर खान
खम खाई पाई सजा फिर लाग्यो पछतान ॥
फिर लाग्यो पछतान बुद्धि अपनी कों रोयो
निरगुनियन के पास बैठि गुन अपनो खोयो ॥

कह० कहूं जेये नहि ओखे ।
चोंच खटक के टूटि सुवा दाड़िम के धोखे ॥
गदहा थोरे दिनन में खूंद खाय इतरात ।
अफरान्यो मारन कहै एराकी के लात ॥
एराकी के लात देत संका नहिं आनै ।
एराकी सहि रहत ताहि कोउ नहिं जानै ॥
कह० रहैगी कोलों दुबधा ।
एराकी की लात फेर कैसें सहै गदहा ॥
महुआ नित उठ दाख सों करत मसलहत आय ।
हम तुम सूखे एक से हूजत हैं रसराय ॥
हूजत हैं रसराय बिलग जिन याको मानो ।
मधुर मिष्ट हम अधिक कछू जिन जिय में आनो ॥
कह० कहत साहिब सों रहुआ ।
तुम नीची कुल बेलि बृच्छ हम ऊंचे महुआ ॥
गुलतुर्रा सों जाय के बाद करै जु करील ।
हम तुम सूखे एक से पूछ देखिये भील ॥
पूछ देखिये भील भेद जो जानै मेरो ।
तूहू पूछ बुलाय भेद जो जानै तेरो ।
कह० नातरि हों करिहों हुर्रा ।
अब जनि भूलि गुमान करै फिर हों गुलतुर्रा ॥
बगुला झपटत बाज पै बाज रहे सिर नाय ।
कुलहा दीने पग बंधे खोटें दे फहराय ॥
खोटें दे फहराय कहे जो जो मन आवे ।
कुलहा ले पग छोरि धनी बिन कोन छुवावे ॥
कह० अरे तू सुन खग बगुला ।
समयो पलट्यो जान बाज पै झपटै बगुला ॥
कोआ कहत मराल सों कोन जाति को गोत ।
तोसों बदरूपी महा कोउ न जग में होत ॥
कोउ न जग में होत कुटिल मैले मनखाने ।
उसर बैठ मर्याद भ्रष्ट आचार न जाने ॥

कह० कहांते आयो होआ ।
धन्य हमारो देस जहां सज्जन जन कोआ ॥
सांईं घोड़न के अछत गदहन आयो राज ।
कौआ लीजे हाथ के दूर कीजिये बाज ॥
दूर कीजिये बाज राज ऐसो ही आयो ।
सिंह क़ैद में कियो स्यार गजराज चढ़ायो ॥
कह० जहां यह वृक्ष बड़ाई ।
तहां न कीजे सांझ सवारेहि चलिये सांईं ॥
भौंरा ये दिन कठिन हैं दुख सुख सहो शरीर ।
जब लग फुले न केतकी तब लग बिलम करील ॥
तब लग बिलम करील हर्ष मन सोच न कीजे ।
जैसी बहे बयार पीठ तब तैसी दीजे ॥
कह० होय जिन जिय में बौरा ।
सहे दु:ख अरु सु:ख एक सज्जन अरु भौंरा ॥
हिरना बिछुर्यो सिंहसों झोंझर खुरो चलाय ।
झारखंड झीनो पर्यो सिंहा गयो बराय ॥
सिंहा गयो बराय समीं सामर्थ बिचार्यो ।
कुलहि कालिमा लाय हंस्यो हंसके हो हार्यो ॥
कह० मोहि याही बन फिरना ।
आज गई कलि जाउं काल्ह हों हों के हिरना ॥

॥ अथ पहेली ॥

इक नारी औ पुरुष हैं ढेर । सब से मिले एक ही बेर ।
दिना चार का अंतर होय । लपटैं पुरुष छुड़ावे सोय ॥

॥ कंघी ॥

पानी में निस दिन रहे जाके हाड़ न मास ।
काम करे तलवार को फिर पानी में बास ॥

॥ कुम्हार का डोरा ॥

जल में रहे झूठ नहिं भाखे बसे सुनगर मझार ।
मच्छ कच्छ दादुर नहीं पंडित करो बिचार ॥

॥ घड़ी ॥

स्याम बरन पर हरि नहीं जटा धरे नहिं ईस ।
ना जानू पिया कौन है पंक लगाए सीस ॥

॥ कसेरू ॥

इक तरवर अरु आधा नाम। अर्थ करो के छाड़ो गाम ॥

॥ नीम ॥

उपजा जल का जल में रहै आंखों देखा खुसरो कहै ॥

॥ काजल ॥

सीस जटा पोथी गहे सेत बसन गल माहिं ।
जोगी जंगम है नहीं ब्राह्मन पंडित नाहिं ॥

॥ लहसन ॥

स्याम बरन पीतांबर कांधे मुरली धर नहिं होय ।
बिन मुरली बहु नाद करत है बिरला बूझे कोय ॥

॥ भौंरा ॥

कर बोले करही सुने श्रवण सुने नहिं ताहि ।
कहै पहेली बीरबल सुनिये अकबरशाहि ॥

॥ नाड़ी ॥

बांबी वाकी जल भरी ऊपर जारी आग ।
जबे बजाई बांसुरी निकस्यो कारो नाग ॥

॥ हुक्का ॥

नर नारी हम एके दीठे। जों जों बोलैं तों तों मीठे।
एकन्हाय एक सेकन हारा। कह खुसरो नहिं कीच नगारा ॥

॥ नगारा ॥

स्याम बरन अरु सोहनो फूलनि छाई पीठ ।
सबै पुरुष के गल परत ऐसो लंगर ढीठ ॥

॥ ढाल ॥

सिर पर सोहे गंग जल मुंड माल गल माहिं ।
बाहन वाको वृषभ है शिव कहिये के नाहिं ॥

॥ रहंट ॥

रंग बरंग इक पक्षी बना। छोटी चोंच अरु काटे घना ॥
तीस तीस मिल बिलमें बसैं। जीव नहीं अरु उड़ के डसैं ॥
॥ तीर ॥
देखी एक अनोखी नारी। गुन उस में एक सब से भारी ॥
पढ़ी नहीं अरु अचरज आवे। मरना जीना तुरत बतावे ॥
॥ नाड़ी ॥
फाट्यो पेट दरिद्री नाम। उत्तम घर में वाको ठाम ॥
श्रीको अनुज बिष्णुको सारो। पण्डित होयसो अर्थ बिचारो ॥
॥ शंख ॥
नर के पेट जो नारी बसे। पकड़ हिलाये खिल खिल हंसे ॥
पेट फाड़ जब नारी गिरी। मोको लागी प्यारी खरी ॥
॥ गिरी ॥
बारे से वह सब को भावे। बढ़ा हुआ कुछ काम न आवे ॥
मैं कह दीया उसका नाम। अर्थ करो के छाड़ो गाम ॥
॥ दीया ॥
चहूं ओर फिर आई। जिन देखी तिन खाई ॥
॥ खाई ॥
आधी बूबू सारी रानी। अर्थ करो कोइ पण्डित ज्ञानी
॥ बूरानी ॥
नारि बुलाई खरचे दाम। तन गोरो औ अभरन स्याम ॥
आवतही परदेस सिधारी। पहुंचो जहां भई अति प्यारी ॥
भरी गई रीती ह्वै आई। तब वह नारी पुरुष कहाई ॥
॥ हुंडी ॥
आदि कटेतें सब को पारे। मध्य कटेतें सब को मारे ॥
अंत कटेतें सब को मीठा। सो खुसरो मैं आखें दीठा ॥
॥ काजल ॥
पक्षी एक सेत औ हर्‌यो। निस दिन रहे बाग में पर्‌यो ॥
ना कछु पीवे ना कछु खाय। अस्व बराबर दौर्‌यो जाय ॥
॥ बकमुआ ॥

एक नारि भौंरेसी कालो। कान नहीं अरु पहरे बालो॥
नाक नहीं अरु सूंघे फूल। जेता अरज तेताही तूल॥

॥ ढाल ॥

एक नारि वह है बहुरंगी। घर से बाहर निकसे नंगी॥
उस नारी का यही सिंगार। सिर पर नयनी मुंह पर वार॥

॥ तलवार ॥

एक नारि करतार बनाई। ना वह क्वारी ना वह व्याही॥
सूहे रंग सदा ही रहै। भाभी भाभी सब जग कहै॥

॥ बीरबहुट्टी ॥

आधा भक्तन मुख बसे। आधा गुनियन साथ।
वाहि पंसारी देत है। पुड़ी बांध के हाथ॥

॥ हरताल॥

खेत में उपजै सब कोउ खाय। घर में होय तो घर बह जाय॥

॥ फूट ॥

एक अचंभा देखो चल। सूखी लकड़ी लागे फल॥
जो कोई उस फल को खाय। पेड़ छोड़ वह अनत न जाय॥

॥ बरछी ॥

॥ बिहारी की सतसई ॥

इन दुखिया अंखियान कों सुख सिरजोई नांहिं ।
देखत बनै न देखतें बिन देखे अकुलांहिं ॥
खल बढ़ई बल करि थके कटे न कुबत कुठार ।
आल बाल उर झालरी खरी प्रेम तरु डार ॥
करत जात जेती कटनि बढ़ि रस सरिता सोत ।
आल बाल उर प्रेम तरु तितो तितो दृढ़ होत ॥
बहकि बड़ाई आपनी कत राचत मति भूल ।
बिन मधु मधुकर के हिये गड़े न गुड़हर फूल ॥
रस सिंगार मंजन किये कंजन भंजन दैन ।
अंजन रंजन हूं बिना खंजन गंजन नैन ॥
सायक सम घायक नयन रंगे त्रिविधि रंग गात ।
झखो बिलखि दुरिजात जल लखि जलजात लजात ॥
वरजीते सर मैन के ऐसे देखे मैन ।
हरिनी के नयनान तें हरि नीके ये नैन ॥
पचाही तिथि पाइये वा घर के चहुं पास ।
नित प्रति पून्योही रहत आनन ओप उजास ॥
तन भूखन अंजन दृगन पगन महाउर रङ्ग ।
नहिं सोभा को साजियत काहवेही के अङ्ग ॥
मानो बिधि तन अच्छ छबि स्वच्छ राखिबे काज ।
दृग पग पोंछन कों किये भूखन पायंदाज ॥
कहा कुसुम कह कौमुदी कितक आरसी जोति ।
जाकी उजराई लखे आंखि ऊजरी होति ॥
अंग अंग नग जगमगत दीप सिखा सी देह ।
दिया बढायेंहूं रहत बड़ो उजेरो गेह ॥
अंग अंग प्रतिबिम्ब परि दरपन से सब गात ।
दुहरे तिहरे चौहरे भूखन जाने जात ॥

लिखन बैठि जाकी सबिहिं गहि गहि गरब गरूर ।
भये न केते जगत के चतुर चितेरे कूर ॥
केसर क्यों सर करि सके चंपक कितिक अनूप ।
गात रूप लखि जात दुरि जातरूप को रूप ॥
भूखन भार संभारिहिं क्यों यह तन सुकुमार ।
सूधे पायन धरि परत महि सोभा के भार ॥
छाले परिवे के डरन सकति न हाथ छुवाय ।
झझकति हिये गुलाब के झवां झंवावत पाय ॥
मैं बरजी कैबार तू उत कत लेत करोंट ।
पखुरी लगे गुलाब की परिहैं गात खरोंट ॥
छकि रसाल सौरभ सने मधुर माधुरी गंध ।
ठौर ठौर झौंरत फिरें भौंर भौंर मधु अंध ॥
दिस दिस कुसुमति देखिये उपबन विपिन समाज ।
मनहुं बियोगिन कों कियो सर पजर ऋतुराज ॥
फिर घर कों नूतन पथिक चले चकित चित भागि ।
फूले देखि पलास बन समुहौं समुझि दवागि ॥
नाहिंन ये पावक प्रबल लुयें चलत चहुं पास ।
मानहुं बिरह बसंत के ग्रीखम लए उसास ॥
कहलाने एकत बसत अहि मयूर मृग बाघ ।
जगत तपोबन सो कियो दीरघ दाघ निदाघ ॥
बैठ रही अति सघन बन पैठि सदन तन मांह ।
निरखि दुपहरी जेठ की छांहौ चाहत छांह ॥
पावस घन अंधियार में रह्यो भेद नहिं आन ।
रात द्यौस जानोपरे लखि चकई चकवान ॥
घनघेरी छुटिगो हरखि चली चहूं दिस राह ।
कियो सुचैनो आय जग सरद सूर नरनाह ॥
अरुन सरोरुह कर चरन दृग खंजन मुख चंद ।
समय पाय सुन्दर सरद काहि न करहि अनंद ॥
लगत सुभग सीतल किरन निसदिन सुख अवगाहि ।
मांह ससी भ्रम सूरत्यौं रहत चकोरी चाहि ॥

रणित भृंग घंटावली झरत दान मद नीर ।
मंद मंद आवत चल्यो कुंजर कुंज समीर ॥
रुक्यो सांकरी कुंजमग करत झांझ झुकरात ।
मंद मंद मारुत तुरंग खुदरत आवत जात ॥
चुवत स्वेद मकरंद कन तरुतरुतर बिरमाय ।
आवत दच्छिन तें चल्यो थक्यो बटोही वाय ॥
रहे रुके कैहूं सुचलि अधिक राति पधारि ।
हरत ताप सब द्यौस को उर लगि यारि बयारि ॥
चटकनचाउत घटतहूं सज्जन नेह गंभीर ।
फीको परे न बर घटै रंग्यो चोल रंग चीर ॥
नये बिससिये लखि नये दुर्जन दुसह सुभाय ।
आड़े परि प्राननि हरै कांटे लौ लगि पाय ॥
जेती संपति कृपिन की तेती तू मति जोर ।
ज्यों ज्यों बाढ़त उरज उर त्यों त्यों होत कठोर ॥
नीच हिये हुलसे रहत गहे गेंद को पोत ।
ज्यों ज्यों माथे मारिये त्यों त्यों ऊंचो होत ॥
कोटि जतन कीजे तऊ परै न प्रकृतिहिं बीच ।
नल बल जल ऊंचे चढ़े अंत नीच को नीच ॥
कैसे छोटे नरन सों सरत बड़न के काम ।
मढ़्यो दमामो जात है कहिं चूहे के चाम ॥
ओछे बड़े न ह्वै सकैं लगि सतरौहें बैन ।
दीरघ होंहि न नेकहू फारि निहारें नैन ॥
अति अगाध अति ऊथरो नदी कूप सरवाय ।
सो ताको सागर जहां जाकी प्यास बुझाय ॥
मीत न नीत गलीत यह जो धन धरिये जोरि ।
खाये खरचे जो बचे तो जोरिये करोरि ॥
दुसह दुराज प्रजान को क्यों न बढ़े दुख दन्द ।
अधिक अंधेरो जग करें मिलि मावस रवि चन्द ॥
घर घर डोले दीन ह्वै जन जन जाचत जाय ।
दिये लोभ चसमा चखनि लघु पुनि बडो लखाय ॥

बसे बुराई जासु तन ताही को सनमान ।
भलो भले कहि छोड़िये खोटे ग्रह जपदान ॥
सबै सुहाएई लगें बसे सुहाये ठाम ।
गोरे मुंह बेंदी लसै अरुन पीत सित स्याम ॥
संगति सुमति न पावई परे कुमति के धंध ।
राखहु मेल कपूर में हींग न होय सुगंध ॥
सबै हंसत कर तार दे नागरता के नांव ।
गयो गरब गुन को सबै बसे गमेले गांव ॥
सोहत संग समान सों यहै कहै सब लोग ।
पान पीक ओंठन बनै काजर नैनन जोग ॥
जो सिर धरि महिमा मही लहियत राजा राय ।
प्रगटत जड़ता आपनी मुकुट पारियत पाय ॥
अरे परेखो क्यों करे तूही बिहंग बिचार ।
किहिं नर किहिं सर राखिये खरे बढ़े परिवार ॥
बुरो बुराई जो तजे तो चित खरो सकात ॥
जों निकलंक मयंक लखि गनैं लोग उतपात ।
भावरि अनभावरि भरो करो कोरि बकवाद ॥
अपनी अपनी भांति को छुटे न सहज सवाद ।
को कहसके बड़ेन सों लखें बड़ी औ भूल ।
दीने दई गुलाब के इन डारन ए फूल ॥
को कहिसके बड़ेन सों बड़े बंस की खानि ।
भलो भलो सबही करै धुआं अगर को जान ॥
चित दै देखि चकोर त्यों तीजे भले न भूख ॥
चिनगी चुगें अंगार की पियें कि चंद मयूख ॥
चले जाहु ह्यां को करत हाथिन को व्योपार ।
नहिं जानत एहि पुर बसें धोबी और कुंभार ॥
नर की औ नल नीर की गति एकै करि जोय ।
जेतो नीचो है चलै तेतो ऊंचो होय ॥
बढ़त बढ़त संपति सलिल मन सरोज बढ़िजाय ।
घटत घटत सुन फिरि घटे बरन मूल कुंभिलाय ॥

समै समै सुन्दर सबै रूप कुरूप न कोय ।
मन की रुचि जती जिते तित तेती रुचि होय ॥
संगत दोख लगै सबनि कहत्तें सांचे बैन ।
कुटिल बंक भ्रूसंगतें कुटिल बंक गति नैन ॥
जिन दिन देखे वे कुसुम गई सु बीती बहार ।
अब अलि रही गुलाब की अपत कटीली डार ॥
एहि आसा अटक्यो रहे अलि गुलाब के मूल ।
ह्वै है बहुरि बसन्त ऋतु इन डारन वे फूल ॥
सिरस कुसुम मडरात अलि झूपि झपट लपटात ।
दरसत अति सुकुमारता परसत मन न पत्यात ॥
पटु पांखें भखु कांकरें सदा परेई संग ।
सुखी परेवा जगत में एकै तुही बिहंग ॥
दिन दस आदर पाय के करलै आपु बखान ।
जों लगि काग सराधपखु तब लगि तो सनमान ॥
स्वारथ सुकृत न श्रम बृथा देखि बिहंग बिचारि ।
बाज पराये हाथ पर तू पंछी हि न मारि ॥
मरत प्यास पिंजरा पर्यो सुगा समै के फेरि ।
आदर दै दै बोलियतु बायस बलि की बेरि ॥
कालि दसहरा बीति है धर मूरख जिय लाज ।
दुर्यो फिरत कत द्रुमन में नीलकंठ बिन काज ॥
जदपि पुराने बक तऊ सरवर निकट कुचाल ।
नये भये तो कह भये ये मनहरन मराल ॥
को छूटो एहि जाल परि कत कुरंग अकुलात ।
ज्यों ज्यों सरझि भजो चहे त्यों त्यों उरझो जात ॥
नहिं पावस ऋतुराज यह तजि तरवर मति भूल ।
अपत भये बिन पाय है क्यों नव दल फल फूल ॥
जनम जलधि पानी बिमल भो जग आप अपार ।
रहे गुनी हू गर परे भले न मुक्ताहार ॥
मूड़ चढ़ाये हूं रहे पर्यो पीठ कच भार ।
गरें परें पहुं राखिये तऊ हाय पर हार ॥

करलि सूंघि सराहिकै रहे सबै गहि मौन ।
गंधी गंध गुलाब को गंवई गाहक कौन ॥
करि फुलेल को आचमन मीठो कहत सराहि ॥
ए गन्धी मति अंध तू अतर दिखावत काहि ।
कनक कनक तें सौ गुनी मादकता अधिकाय ॥
वह खाये बौरात है यह पाये बौराय ॥
बड़े न हूजे गुनन बिन बिरद बड़ाई पाय ।
कनक धतूरा सों कहत गहनों गढ़ो न जाय ॥
संबत ग्रह शशि जलधि छिति छठ तिथि बासर चन्द ।
चैत मास पख कृष्ण में पूरण आनंद कन्द ॥
ब्रजभाषा बरनी कबिन बहु बिधि बुद्धिबिलास ।
सब की भूखण सतसई करी बिहारीदास ॥

इति ॥

॥ कबीर की साखी ॥

जद्यपि हम कायर कुटिल खरे चाकरी चोर ।
तद्यपि कृपा न छांड़ियो चितै आपनी ओर ॥
पालू बिचारा क्या करे जो हिरदा भया कठोर ।
नौ नेजे पानी चढ़े तऊ न भीजे कोर ॥
जिन खोजा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ ।
हौं बौरी ढूंढन गई रही किनारे बैठ ॥
बालू जैसी करकरी उज्जल जैसी धुप ।
ऐसी मीठी कछु नहीं जैसी मीठी चुप ॥
नव द्वारे का पींजरा ता में पंछी पौन ।
रहने को आचर्य है गए अचंभा कौन ॥
द्वार धनी के परि रहे धका धनी का खाइ ।
कबहूं धनी निवाजही जो दर छांड़ि न जाइ ॥
साहिब के दरबार में कमी काहु की नांहि ।
बंदा मौज न पावही चूक चाकरी मांहि ॥
मेरा मुजको कुछ नहीं जो कुछ है सो तोर ।
तेरा तुज को सौंपता क्या लागे है मोर ॥
दुख सुख एक समान है हरख सोक नहिं व्याप ।
पर उपकार निहकामता उपजे छोह न ताप ॥
जो तोकूं कांटा बुवे ताहि बोइ तू फूल ।
तोकों फूल के फल हैं ताकों हैं तिरसूल ॥
दुरबल को न सताइये जाकी मोटी हाय ।
मुई खाल की स्वांस लों सार भसम होइजाय ॥
या दुनियां में आइ के छांड़ देइ तू ऐंठ ।
लेना है सो लेइ ले उठी जात है पैंठ ॥
ऐसी बानी बोलिये मन का आपा खोय ।
औरन को सीतल करे आपो सीतल होय ॥
दुख में सुमिरन सब करे सुख में करे न कोय ।

सुख में जो सुमिरन करे तो दुख काहे को होइ ॥
एकहि साधे सब सधे सब साधे सब जाय ।
जो तू सींचे मूल को फूले फले अघाय ॥
सब आये इस एक में डार पात फल फूल ।
कबिरा पीछे क्या रहा गहि पकरा जिन मूल ॥
माटी कहे कुंभार सों तू क्या रूंधे मोहि ।
इक दिन ऐसा होइगा मैं रूंधोंगी तोहि ॥
चलन चलन सब कोइ कहे पहुंचे बिरला कोइ ।
एक कनक अरु कामिनी दुर्लभ घाटी दोइ ॥
पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुवा पंडित भया न कोय ।
एके अच्छर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय ॥
कलि का बाह्मन मसखरा ताहि न दीजे दान ।
कुटुंब सहित नरके चला साथ लिये जिजमान ॥
चाह घटी चिन्ता गई मनुवां बेपरवाह ।
जिनको कछू न चाहिये सो साहनपतिसाह ॥
जहां दया तहां धर्म है लोभ जहां है पाप ।
जहां क्रोध तहां काल है जहां छिमा तहां आप ॥
सांच बरोबर तप नहीं झूठ बरोबर पाप ।
जाके हिरदे सांच है ताके हिरदे आप ॥
सांचे स्राप न लागई सांचे काल न खाइ ।
सांचे को सांचा मिले सांचे मांहि समाइ ॥
माला फेरत जुग गया पाय न मन का फेर ।
करका मनका छाड़ि के मन का मन का फेर ॥
साहिब सों सब होत है बंदे सों कुछ नांहि ।
राई सों परबत करे परबत राई मांहि ॥
बुरा जो देखन मैं चला बुरा न दीखे कोय ।
जो दिल खोजों आपना तो मुझसा बुरा न कोय ॥
देह धरे को डंड है सब काहू को होय ।
ज्ञानी भुगते ज्ञान सों मूरख भुगते रोय ॥
काल करे सो आज कर आज करे सो अब ।